ॐ

बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र

मूलसूत्र हिन्दी अनुवाद

उपोद्घात, टिप्पणी, परिशिष्ट
और चित्र सहित

अनुवादक और लेखक
लाला कन्नोमल एम. ए. जज.

प्रकाशक
मोतीलाल बनारसीदास
अध्यक्ष— पञ्जाब संस्कृत पुस्तकालय
सैद मिट्ठा बाजार लाहौर

मुद्रक
सरदारीलाल जैन,
मैनेजर "मुंबई संस्कृत प्रेस" सैद मिट्ठा लाहौर
संवत् १९८० * सन् १९२४

His Highness,

LOKENDRA MAHARAJA

Sir Govind Singh Bahadur K. C. S. I,

MAHARAJA OF DATIA.

DEDICATED RESPECTFULLY
TO
HIS HIGHNESS
LOKENDRA MAHARAJA
SIR GOVIND SINGH
BAHADUR K. C. S. I.
MAHARAJA OF DATIA,
WHO IS, AS HIS HIGHNESS ILLLUS-
TRIOUS ANCESTORS EVER
WERE. A TRUE LOVER AND
PATRON OF THE ANCIENT
LITERATURE AND ARTS
OF INDIA AND WHOSE
COLLECTION OF
ANCIENT
ILLUMINATED
MANUSCRIPTS AND
PAINTINGS, IS ONE OF THE
MOST EXQUISITE AND PRICELESS
TREASURES OF INDIAN ANTIQUITIES,
BY
The AUTHOR.

उपोद्घात ।

भारतवर्ष का साहित्य चार भागों में विभक्त है अर्थात् धार्मिक, आर्थिक, कामिक और मौक्षिक ।

धार्मिक साहित्य में वेद, पुराण, स्मृति तथा उनके स्पष्टीकरण ग्रन्थ हैं । यह साहित्य वृहदाकार है और छपे हुये उपलब्ध ग्रन्थों के अतिरिक्त सहस्रों हस्तलिखित पुस्तकें बड़े बड़े पुस्तकालयों में सुरक्षित मिलती हैं। इस साहित्य की अधिकता का कारण यही है कि हिन्दू जाति धर्म को प्राणों से भी अधिक समझती है । इन ग्रन्थों की रक्षा करने में आर्य जाति भरपूर चेष्टा करती रही है और इन्हें नष्ट होने से बचाती रही है। धार्मिक साहित्य से वह साहित्य कम है जिस का उद्देश्य दार्शनिक विचारों द्वारा तत्व प्रतिपादन करना है और मोक्ष पुरुषार्थ की प्राप्ति में सहायता देना है। इस साहित्य में उपनिषत्, दर्शनशास्त्र, गीता तथा इन ग्रन्थों पर भाष्य और स्वतंत्र ग्रन्थ हैं जिन की संख्या बहुत है । धार्मिक ग्रन्थों में भी मोक्ष सम्बन्धीय विषय प्रतिपादित है लेकिन इन ग्रन्थों में जिन्हें हम ने मौक्षिक साहित्य में लिखा है यह विषय दार्शनिक रीति से वर्णित है। आर्थिक साहित्य के बहुत कम ग्रन्थ मिलते हैं। प्राचीन काल में वार्ताशास्त्र (सम्पत्ति शास्त्र) जिस का विषय कृषि, पशुपालन और वाणिज्य था इसी साहित्य विभाग के अन्तर्गत था। नीति शास्त्र भी इसी में रखा गया है। इस विषय के उपलब्ध ग्रन्थ कामन्दकीय नीति, शुक्र-नीति, चाणक्यनीति, विदुर-नीति आदि ग्रन्थों के सिवा महाभारत मनुस्मृति, पुराणादि के वे अंश जिन में इस विषय का वर्णन है। प्राचीन काल में इस विषय के बहुत ग्रन्थ थे जिन के उल्लेख अन्यान्य ग्रन्थों में मिलते हैं पर वे ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। ऐसे

ग्रन्थों में कौटिल्य अर्थशास्त्र है जो अब तक गुप्त था लेकिन थोड़े वर्ष हुये कि उस की एक हस्त-लिखित प्रति मैशूर राज्य के पुस्तकालय में मिली । शामशास्त्री ने उस ग्रन्थ के मूल को ही न प्रकाशित किया बल्कि उस का अंगरेजी अनुवाद भी छपा डाला इस ग्रन्थ के छपते ही विद्वानों में धूम मच गई और कम से कम २३००-२४०० वर्ष पहले के इतिहास पर प्रचण्ड प्रकाश पड़ा। अब इस ग्रन्थ का भाषानुवाद भी हो गया है पंजाब संस्कृत बुक डिपो, लाहौर के यहां मिलता है। कौटिल्य-अर्थ-शास्त्र चाणक्य मुनि का लिखा है जिस ने मौर्य चन्द्रगुप्त को नन्दों की गद्दी पर बैठाया था। इस सम्राट का समय अब भली भाँति निश्चित है। यह सम्राट ईसा से ३२१ वर्ष पहले राज्य सिंहासन पर बैठा था। इस ग्रन्थ में उस समय की सभ्यता और राज्यनीति का अच्छा विवरण है। चाणक्य मुनि ने अपना ग्रन्थ प्राचीन लेखकों के आधार पर लिखा है जिस से मालूम होता है कि पहले इस विषय के अनेक प्रामाणिक ग्रन्थ थे जो अब नहीं मिलते हैं। इन्हीं प्राचीन लेखकों में बृहस्पति थे जिन के अर्थशास्त्र के उल्लेख अनेक ग्रन्थों में मिलते हैं लेकिन उन का लिखा सम्पूर्ण अर्थशास्त्र अनुपलब्ध है। थोड़े वर्ष हुये अर्थशास्त्र सम्बन्धी इनके सूत्र मिले हैं जिस का अंगरेजी अनुवाद योरुप में निकल चुका है। वह अब संस्कृत मूल सहित हिन्दुस्थान में भी पुस्तकाकार प्रकाशित होगया है। और पंजाब संस्कृत बुक डिपो, लाहौर से प्राप्य है। इसी ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद इस पुस्तक का विषय है। कामिक साहित्य के बहुत ही कम ग्रन्थ उपलब्ध हैं। उपलब्ध ग्रन्थों में वात्स्यायन सूत्र, रतिरहस्य, अनङ्गरङ्ग पंच सायक आदि हैं। इनमें से कुछ ग्रन्थों का अंगरेजी अनुवाद होगया है लेकिन वह आमतौर से नहीं मिलता है क्योंकि विषय गोपनीय है। कामिक साहित्य में मुख्यतः तो इसी प्रकार के ग्रन्थ हैं पर गौणरीत्या उस के अन्तर्गत वे सब ग्रन्थ या ग्रन्थांश हो सकते हैं जिन का विषय ललित कलाओं से सम्बन्ध रखता है। ललित कलाओं के मुख्य अङ्ग पांच हैं—भवन निर्माण कला (architecture)

शिल्प (Sculpture), चित्रकला (painting), संगीत (music) और काव्य (poetry), इन में से प्रत्येक विषय की कई शाखाएं हैं जैसे काव्य के अन्तर्गत नाटक, नृत्यादि अथवा संगीत के अन्तर्गत गाना, बजाना, अनेक प्रकार के बाजे इत्यादि। पहले दो विषयों पर स्वतंत्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं पर शुक्रनीति, पुराण तथा इतिहासों में इस विषय का वर्णन मिलता है। काव्य ग्रन्थ अनेक हैं–नाटक और नाट्यशास्त्र भी उपलब्ध हैं। संगीत के कई प्रामाणिक ग्रन्थ मिलते हैं जिन में संगीतरत्नाकर मुख्य है। चित्रकला पर भी स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं मिलते पर प्राचीन चित्र बहुत मिलते हैं जिन के देखने से ज्ञात होता है कि यह कला प्राचीन समय में बड़ी उच्चावस्था को प्राप्त हो गई थी। गौणरूप से चौसठ कलाएं हैं जो सब ललित कलाओं के अन्तर्गत हैं।

अब हम बार्हस्पत्य सूत्रों के विषय में लिखते हैं जो इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है।

प्राचीन भारत में तीन बृहस्पति प्रसिद्ध थे एक तो चार्वाक सिद्धान्त के आचार्य, दूसरे बृहस्पति संहिता के रचयिता और तीसरे बृहस्पति अर्थ शास्त्र के आचार्य थे। वात्स्यायन काम सूत्रों में लिखा है कि जब प्रजापति ने सृष्टि को रचा तो प्रजा की स्थिति निबन्धन के लिये तीन प्रकार के साधन एक लाख अध्यायों में कहे। उन में से धर्म का विषय तो स्वायंभुव मनु ने ले लिया, काम सम्बन्धी विषय नान्दी ने और अर्थ सम्बन्धी विषय बृहस्पति जी ने। इस प्रकार बृहस्पति जी अर्थ शास्त्र के प्रथम आचार्य हैं। अन्य जितने आचार्य इस विषय के हुये हैं वे सब इनके पीछे के हैं। आद्याचार्य होने के कारण इन का बड़ा महत्व है और पीछे के ग्रन्थों में इन के वाक्यों को प्रमाण रूप से माना गया है। नीचे के ग्रन्थों में इस का उल्लेख है:—

१ युक्ति कल्प तरु ग्रन्थ में भोज ने बार्हस्पत्य-नीति का उल्लेख किया है।

२ अश्वघोष ने बुद्धचरित्र में इस का हवाला दिया है।
३ वात्स्यायन काम सूत्रों में इस का जिकर है।
४ प्रतिमा नाटक में भासकवि ने बृहस्पति के अर्थ-शास्त्र का हवाला दिया है।
५ महाभारत में बार्हस्पत्य सूत्रों का जिकर है अन्यान्य ग्रन्थों में भी इस का उल्लेख है। इस से भलीभांति सिद्ध है कि बृहस्पति अर्थशास्त्र प्रामाणिक और अति प्राचीन है।

निम्न लिखित अर्थशास्त्रीय मत प्राचीन भारत वर्ष में प्रसिद्ध थेः– बार्हस्पत्य मत, मानव मत, औशनष मत, आम्भीय मत, और पाराशर मत।

अर्थ शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ इन इन लेखकों ने लिखे हैः— भारद्वाज, विशालाक्ष, पिशुन, कौपदन्त, वातव्याधि, बाहुदन्ती पुत्र, और गौरशिरामुनि, ।

महाभारत में उल्लेख है कि इस शास्त्र को ब्रह्मा ने रचा, उस के पीछे महादेव जी ने उस का संक्षेप किया और उस संक्षेप में से संक्षेप इन्द्र ने किया। इस के पीछे ऊपरोक्त आचार्य इस का संक्षेप करते रहे।

इन सब प्रमाणों से मालूम होता है कि किसी समय अर्थ-शास्त्रीय साहित्य अति बृहदाकार था और इस विषय में भिन्न भिन्न आचार्यों के स्वतंत्र मत थे। खेद है कि यह साहित्य भारत वासियों के हाथ से जाता रहा। अब इस विषय के ग्रन्थों का अभाव है। जो कुछ इस विषय में इतिहास और पुराणों में लिखा था वह तो रक्षित है क्यों कि धार्मिक ग्रन्थ होने से धर्मनिष्ठ भारतवासियों ने इन्हें नष्ट होने से बचा रखे हैं।

यह बड़े मार्के की बात है कि आद्याचार्य बृहस्पति जी के नाम के सूत्र इस समय प्राप्त हुये हैं। इनका अर्थ शास्त्र ग्रन्थ तो मिला नहीं है लेकिन ये सूत्र जो उसी विषय से सम्बन्ध रखते हैं मिले हैं। यह भी योरूप के विद्वानों की कृपा से ही। ये सूत्र पहल पहल

योरूप के एक प्रसिद्ध पत्रिका में प्रकाशित हुये थे जिसका नाम है Le Museon Troisieme Serie (Torme I. No 2, 16 mars 1916). इस में सूत्र रोमन लिपि में छपे थे और इनके साथ इनका अंग्रेजी अनुवाद भूमिका सहित डाक्टर एफ, डब्लू. टोमस साहब ने लगा दिया था । इस पत्रिका के प्रकाशकों की आज्ञा से यह लेख वैदिक मेगजीन की अक्टूबर १६२० के अङ्क में प्रकाशित हुआ। इसमें रोमन लिपिकी जगह सूत्रों को देव नागरी अक्षरों में छापा था। देवनागरी लिपि में करने का यश पण्डित भगवद्दत्त बी. ए. संस्कृत प्रोफेसर, के हाथ है। इसी लेख को पंजाब संस्कृत बुक डिपो, लाहौर ने पुस्तकाकार छाप कर भारतवासियों का उपकार किया है। सूत्रों की संस्कृत पुराने ढंग की है–प्रचलित व्याकरण सिद्धान्तों के अनुसार बहुत से सूत्रों की संस्कृत अशुद्ध मालूम होती है। कहीं कहीं सूत्र कार का अभिप्राय अज्ञात मालूम होता है। सूत्रों पर कोई भाष्य या टीका नहीं है। इस लिये कुछ सूत्रों का अर्थ समझ में आना कठिन होगया हैं कितने ही शब्द ऐसे हैं जिनका अर्थ (ठीक समझ में नहीं आता हैं जैसे कुसुमान्त, वैश्रवण, रसघना तथा कुछ भूगोल सम्बन्धी ऐसे नाम है जिनका पता नहीं लगता है जैसे अम्बष्ट, अतिभोग, आरट्ट, मव्य, रामेयमुना, शकुन्त आदि।

नीचे लिखे सूत्रों का ठीक अर्थ नहीं मालूम पड़ता:—

अविषये लोभमदानसंज्ञम्	२२	प्रथम अध्याय
द्यूतपरताप इत्यादि	३६	"
गजाश्वक्रीडे इत्यादि	४२	"
स्मितेन स्वागतेन इत्यादि	७२	"
वर्णिकापरिग्रहं इत्यादि	७८	"
कर्मकारान्प्रति इत्यादि	७६	"
कुसुमान्तान् इत्यादि	६८	"
यथा मातङ्गचोरव्याल इत्यादि	१००	"
भूतद्रोहिणः इत्यादि	१०४	"
यशो वीर्यायुः इत्यादि	१०५	"

सुहृत्सुशुभशीलः इत्यादि	१०८	प्रथम अध्याय
चन्द्रादित्य इत्यादि	१०९	,,
यदि चेन्न ,,	११०	,,
बौद्धसंचितं कुलं इत्यादि	३४	दूसरा अध्याय
पुरुषः सागरमपि इत्यादि	५८	,,
तत पाकांश्च	३२	तीसरा अध्याय
निर्दयस्य इत्यादि	३६	,,
अग्राह्या न	६२	,,
तत्रोत्तरे हिमवान्	७०	,,
निरुद्धा भारवेषा	१३६	,,
द्वापरे इत्यादि	१४४	,,
यत्र कलहम्भर्त्सनं इत्यादि	३६	चौथा अध्याय
वृद्धो वैश्रवणो इत्यादि	३९	,,
मन्त्रविद्यागुह्य पद्मेषु इत्यादि	१७	पांचवां अध्याय
वीरण सारैः सह इत्यादि	२२	,,
अक्रोपनश्च इत्यादि	२६	,,
हृदये यथा इत्यादि	२८	,,

नीचे लिखे सूत्र पीछे से मिलाये हुये कहे जाते हैं:—

८–३५ दूसरा अध्याय

९–१६, ३३–३७, ११९–१२७ तीसरा अध्याय

८–३५ (दूसरा अध्याय) सूत्रों में कापालिक लोकायातिक आर्हत और बौद्धों की निन्दा है

९–१६ (३ अ.) सूत्रों में शाक्त, वैष्णव, शैव सम्प्रदायों की प्रशंसाका उल्लेख है और लोकायतिक, क्षपणक और बौद्ध मार्गों की निन्दा है ।

३३–३७ (,,) सूत्रों में शाक्त, वैष्णव और शैव सम्प्रदायों के शास्त्रों के पढ़ने का आदेश है।

११९–१३३ ,, सूत्रों में शाक्त, वैष्णव और शैव क्षेत्रों के नाम हैं और साम्प्रदायिक देवताओं के रहने के स्थानों के नाम हैं ।

ऊपरोक्त सूत्रों के आधार पर डाक्टर एफ डबल्यु टोमस साहब ने जिन्हों ने इन का अंगरेजी अनुवाद किया है बार्हस्पत्य सूत्रों के लिखे जाने का समय ईसा की १२वीं शताब्दी लिखा है। इस सम्मति के समर्थन में आप ने लिखा है कि इन सूत्रों में देवगिरि के यादवों का उल्लेख है और जो १२वीं शताब्दी के लगभग हुये हैं। लेकिन यह तर्क कुछ प्रबल नहीं है। पहले तो तीसरे अध्याय का १०५ वां सूत्र जिस में यादव शब्द आया है देवगिरि से कोई सम्बन्ध ही नहीं रखता है। दूसरे यादव जाति बहुत प्राचीन है। सूत्र यह है जिस के आधार पर यह कल्पना की गई है।

यादवकाञ्ची विषयं चत्वारिंशच्छतमात्रम् १०५ अ. ३।

यादव काञ्ची प्रदेश एकसौ चालीस (योजन) का है।

यहां देवगिरि शब्द नहीं है। इस बात के लिखने की आवश्यकता नहीं कि श्री कृष्णचन्द्र जी यदुवंशी थे। यादव लोग मथुरा में रहते थे। और द्वारका में भी जाबसे थे। श्रीकृष्ण के कुल के जितने थे वे यादव कहलाते थे और ये अतिप्राचीन समय से भारतवर्ष में रहते थे। इन में से कुछ लोग देवगिरि पर चले गये होंगे लेकिन इस से यह अनुमान नहीं निकलता है। कि इस सूत्र में यादवों का नाम आगया है इस लिये यह सूत्र १२ वीं शताब्दी के हैं क्यों कि देवगिरि के यादव इसी समय में हुये हैं। यह उक्त महाशय की खेंचतान है और भारतीय साहित्य की प्राचिनता को घटाने का प्रयत्न है प्रायः देखागया है कि पाश्चात्य संस्कृत विद्वान भारतीय साहित्य की प्राचीनता घटाने में भरपूर प्रयत्न करते हैं और ऐसा करने से शायद वे ये साबित करना चाहते हैं कि प्राचीन समय में यानि इस के जन्मकाल से पहले भारतवासी अधिक सभ्य नहीं थे और भारतीय सभ्यता आधुनिक है। इन्हीं महाशय ने आगे चल कर लिखा है कि सूत्रों की संस्कृत पुरानी मालूम होती है–बहुत से व्याकरण सम्बन्धी प्रयोग ऐसे हैं जिनका ठीक अर्थ ज्ञात नहीं होता है। इन सब बातों पर ध्यान देते हुये नतीजा यही निकलता है कि

ये सूत्र प्राचीन हैं। केवल एक सूत्र में यादव शब्द आजाने से और यादव का अभिप्राय देवगिरि के यादवों को समझने से इन की प्राचीनता पर कुठाराघात नहीं किया जा सकता है। पंडित भगवत-दत्त बी॰ ए॰ जिन्हों ने इन सूत्रों पर एक छोटी सी भूमिका लिखी है और सूत्रों को रोमन लिपि से देवनागरी में किया है, इन सूत्रों को ईसा की छटी या सातवीं शताब्दी से पहले के नहीं समझते हैं। आप ने इस सम्मति के देने में कोई तर्क या प्रमाण नहीं दिया है। पीछे से यह भी कह दिया है कि सम्भव है कि सूत्रों के समय के विषय में डाक्टर टोमस साहब की मनगढन्त ठीक निकले। वैदिक मेगजीन में पंडित जयदेव लिखते हैं कि कालिदास ने मेघदूत में कनखल का उल्लेख किया है—गङ्गाद्वार या हरिद्वार का नहीं इस से मालूम होता है कि कालिदास के समय में हरिद्वार या गंगाद्वार तीर्थ स्थान नहीं था—उनके पीछे के समय में यह तीर्थ माना गया है। इन सूत्रों में (३ अ० १२२ सूत्र) गङ्गाद्वार को शैव तीर्थ माना है। इस लिये ये सूत्र कालिदास से पीछे के समय के मालूम होते हैं। यह तर्क भी कुछ नहीं है। गङ्गाद्वार का नाम मत्स्यपुराण में आया है और मत्स्यपुराण कालिदास के समय से पहले का है। अन्य पुराणों में भी गंगाद्वार तीर्थ का उल्लेख है। मेघदूत में हरिद्वार तीर्थ का नाम नहीं होने से इस तीर्थ की प्राचीनता नष्ट नहीं हो सकती है। अब तक इन सूत्रों के काल के विषय में जो सम्मतियां दीगई हैं वे कल्पनामात्र हैं—कोई अकाट्य प्रमाणों पर अवलम्बित नहीं है।

पहले तो सूत्रों की संस्कृत ही प्राचीनता को बताती है। दूसरे इन में बहुत से सूत्र ऐसे हैं जो चाणक्य सूत्रों से बहुत कुछ मिलते हैं। और चाणक्य सूत्र ईसा से कम से कम ३०० वर्ष पहले के हैं। तीसरे यह बात भलिभांति विचारणीय है कि बृहस्पति अर्थशास्त्र के प्रथम आचार्य है। इस विषय के जितने आचार्य और लेखक हुये हैं। वे उन के पीछे के हैं। चाणक्य मुनि अन्तिम आचार्यों में हैं जैसे चाणक्य ने कौटिल्य अर्थशास्त्र लिखा और पृथक् सूत्र भी लिखे जो चाणक्यसूत्र कहलाते हैं कौटिल्य अर्थशास्त्र के अन्त में

परिशिष्ट रूप से छपे हैं वैसे ही बृहस्पति जी ने अर्थशास्त्र नामक स्वतंत्र ग्रन्थ लिखा हो और इन सूत्रों को पृथक् लिखा हो। हम इन सूत्रों की तुलना चाणक्य सूत्रों से करते हैं जिन के विषय में यह निश्चय हो गया है कि ये चाणक्य मुनि के बनाये हैं जो सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के सम-कालीन थे। इन दोनों सूत्रों की संस्कृत का मिलान करने से मालूम होगा कि चाणक्य सूत्रों की संस्कृत आधुनिक काल की सी मालूम होती है यानि बार्हस्पत्य सूत्रों की संस्कृत मुकाबले में बड़ी प्राचीन मालूम होती है। इस के सिवा इन सूत्रों के विचार भी प्राचीन और अनगढत से मालूम होते हैं इस ओर ध्यान दिलाने की तो आवश्यकता ही नहीं है कि चाणक्य मुनि अपने अर्थशास्त्र में बार्हस्पत्य मत का उल्लेख करते हैं। इस से यह तो भलीभांति प्रमाणित ही है कि बृहस्पति, चाणक्य से पहले समय के हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र पढने से यह भी ज्ञात होगा कि जिन विचारों को बार्हस्पत्य सूत्रों में पुराने या अनगढन्त ढंग से कहा है उन्हें चाणक्य मुनि ने अपने अर्थशास्त्र में मार्जित रूप से लिखा है जैसे राजा की विद्या, राजा की दिनचर्या, मंत्री की योग्यता और उस की नियुक्ति मंत्र की उपयोगिता इत्यादि।

इन सब बातों को देखते और विचारते हुये हम इस अनुमान पर आते हैं कि ये बार्हस्पत्य सूत्र कौटिल्य अर्थशास्त्र और चाणक्य सूत्रों के पहले के हैं। कितने पहले के हैं यह निश्चय करना कठिन है पर यह कहना कि ये इन से पहले के हैं प्रमाण, युक्ति और तर्क-सब से सिद्ध है। इन्हें पिछले समय के बताने में बहुत सी मनः कल्पनाओं से काम लेना पड़ता है और तब भी यह उद्देश्य सिद्ध नहीं होता है, और पहले के बताने में किसी मनगढन्त युक्ति के प्रयोग की अवश्यकता नहीं है। बृहस्पति का समय, सूत्रों की संस्कृत सूत्रों के विचारों की प्राचीनता और उन का अनगढन्तपन, अन्य प्राचीन ग्रन्थों से सूत्रों की तुलना आदि आदि अनेक बातों से इन का प्राचीन होना सिद्ध होता है।

अब दूसरी बात यह है कि टॉमस साहब ने इन सूत्रों में बहुत से सूत्र जिनका ऊपर उल्लेख किया है पीछे से मिला दिये गये कहे हैं और इस कथन का यह प्रमाण दिया है कि इन का विषय आधुनिक है। हम इस विषय में भी विद्वान लेखक से सहमत नहीं हैं।

पहले अध्याय के आठ से पैंतीस सूत्रों में कापालिक, लोकायतिक, आर्हत और बौद्धों का उल्लेख है। ये सब लोग अतिप्राचीन हैं। ईसा से पूर्व काल में इन सब का अस्तित्व था। वर्तमान काल के विचारों के अनुसार हमें वह निन्दा जो सूत्र-कार ने इन लोगों की की है बुरी मालूम होती है पर जिस समय में सूत्र लिखे गये मालूम होते हैं उस समय हिन्दू-धर्म इन सब लोगों को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखता था और उस समय इन के लिये ऐसा लिखागया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। हां हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि ये निन्दा वाक्य निरर्थक और पक्षपात पूर्ण है। जैन और बौद्ध धर्मों के सिद्धान्तों का उपहास करने में उनके साथ घोर अन्याय कियागया है।

तीसरे अध्याय में ६-९ सूत्र शाक्त, वैष्णव और शैव सम्प्रदायों को बताते हैं और लोकायतिक, क्षपणक और बौद्धमार्गों की निन्दा करते हैं। इसी अध्याय के ३३-३७ सूत्रों में शाक्त, वैष्णव और शैव शास्त्रों के पढ़ने का आदेश है और ११६-१२२ सूत्रों में इन सम्प्रदायों के क्षेत्र और देवताओं के रहने के स्थानों का उल्लेख है। ये सब सूत्र भी पीछे से मिले हुये कहे जाते हैं और इस का कारण यह बताया जाता है कि ये सम्प्रदाय आधुनिक हैं और जिन क्षेत्रों और स्थानों को इन्हों ने पवित्र और तीर्थ माने हैं वे प्राचीन काल में ऐसे नहीं माने जाते थे। आधुनिक काल में इन सम्प्रदायों के विकास होने से इन स्थानों का महत्व हो गया है। यह तर्क भी प्रबल नहीं है क्योंकि शाक्त, शैव और वैष्णव सम्प्रदायें प्राचीन हैं-आधुनिक नहीं हैं। इनके सिद्धान्तों का वर्णन लगभग सभी पुराणों में है। शाक्तों के शास्त्र प्राचीन हैं। शाक्त

साहित्य कुछ कम नहीं है। इसका अधिकांश आधुनिक होवे परन्तु मूल सिद्धान्त बड़े प्राचीन हैं। शैव मत की प्राचीनता इतिहास पुराणों से भली भाँति प्रकट है। वैष्णव सिद्धान्तों की तो इन ग्रन्थों में भरमार है। हम यह कह सकते हैं कि इन सम्प्रदायों के बहुत से आचार्य जिन के नाम विख्यात हैं ईस्वी सन में हुये हैं लेकिन इन लोगों ने प्राचीन सिद्धान्तों को ही अपने ग्रन्थों का आधार माना है। सम्प्रदायों के विषय में परिशिष्ठ (१) देखो।

रहा इन सम्प्रदायों के तीर्थ स्थानों के विषय में जो नवीन बताये जाते हैं हम पाठकों का ध्यान पुराणों में वर्णित तीर्थ स्थानों की ओर दिखाते हैं। इन में ऐसे स्थानों की बड़ी लम्बी लम्बी सूचियां दी हुई हैं। मत्स्य पुराण में अनेक तीर्थों का वर्णन है जिनमें कई वेही हैं जो इन सूत्रों में आये हैं। यदि ये साम्प्रदायिक तीर्थ या क्षेत्र नये हैं तो इन के नाम सभी को अच्छी तरह मालूम होने चाहिये और आधुनिक भूगोल ग्रन्थों में शीघ्र ही मिल जाने चाहिये पर यह बात नहीं है।

वैष्णव आठ क्षेत्रों में सालग्राम, अनन्त, सिंह आदि क्षेत्रों के स्थानों का पता नहीं लगता है। जिन क्षेत्रों का पता लगता है जैसे बदरिका, द्वारका आदि उनके प्राचीन होने में किसी को कुछ शंका हो ही नहीं सकती है। जिनका पता नहीं लगता है वे और भी प्राचीन हो सकते हैं क्योंकि यदि नवीन होते तो उनके स्थान निश्चय करने में किसी को कठिनता न होती।

इसी प्रकार शैव क्षेत्रों में रामेयमुना, मध्य, शार्दूलगज क्षेत्रों का पता नहीं लगता है। क्या ये नाम नये हैं ? यदि हैं तो फिर इन का पता क्यों नहीं लगता है। अति प्राचीन होने से ही इनकी ये दशा होना ज्ञात होता है।

शाक्त क्षेत्रों में जाल, पूर्ण, काम, कोल्ल, आदि का पता नहीं है। जो अन्य क्षेत्रों के विषय में लिखा है वह इन से भी लागू है।

लोकायतिक, क्षपणक और बौद्ध मार्गों की निन्दा प्राचीन काल में जब इनका ज़ोर था, स्वाभाविक थी। ईसा स पूर्व काल

में हिन्दू धर्म और इन मतों में घोर वैमनस्य था। एक दूसरे की निन्दा करता और लिखता था। यह बात प्राचीनकाल के ग्रन्थों के देखने से स्पष्ट है। इन तीनों मतों में से लोकायतिक और बौद्ध मत को तो भारतवर्ष से अन्तर्हित हुये १५०० वर्ष के लगभग हो गये-लौकायतिक तो ईसा जन्मकाल से पहले ही जा चुका था। जैन धर्म का पतन हुये भी १३०० से वर्ष के लगभग हुये। आधुनिक काल में जब इन मतों का जोर ही नहीं था तो इन की निन्दा भी लिखने की आवश्यकता न थी। जब दो मतों में रात दिन की स्पर्धा हो और एक दूसरे पर विजय करने की चेष्टा कर रहा हो तभी ग्रन्थों में इस प्रकार की घोर निन्दा लिखने की आवश्यकता दिखाई देती है। इन वाक्यों के लिखने से सूत्रों की प्राचीनता प्रकट है न कि आधुनिकता, सारांश यह है कि पूर्वोक्त सूत्र पीछे से मिलाये हुये नहीं मालूम होते हैं। यह कथन निर्मूल है।

बार्हस्पत्य सूत्रों का विषय।

इन सूत्रों में राजनीति, अर्थशास्त्र, सम्पत्तिशास्त्र, दण्डनीति धर्मशास्त्र आदि सभी के सिद्धान्त दिये हुये हैं। मुख्य विषय यह है:—

राजा कैसा होना चाहिये-उसे कौन-कौन-सी विद्याएं पढ़नी चाहियें-कैसा मंत्री रखना चाहिये-उसके अन्य सेवकों में क्या गुण होने चाहियें-राजा को कौन कौन से काम करने चाहियें और कौन कौन से न करने चाहियें। किस प्रकार के खेल करने चाहियें, उस की महदाकाँक्षा क्या होनी चाहिये-उसे अपने नौकरों, इष्ट मित्रों तथा बांधवों के साथ कैसा वर्ताव रखना चाहिये-साम-दानादि उपायों का कैसा प्रयोग करना चाहिये-उस की दिन-चर्या क्या होनी चाहिये-उसे किस किस का किस रीति से स्वागत करना चाहिये-किन बातों को गुप्त रखना चाहिये-आत्म-रक्षा कैसे करनी चाहिये-सेनापति आदि के साथ कैसा वर्ताव रखना चाहिये। राजा को किन किन की सहायता लेनी चाहिये-किस

प्रकार मर्यादा का पालन करना चाहिये-उसे धर्मशास्त्र के अतिरिक्त वार्ताशास्त्र का अनुशीलन भी करना चाहिये-उसे लौकायतिक कापालिक, आर्हत और बौद्ध सिद्धान्तों की कौन-कौन-सी बात-का अनुकरण करना चाहिये और ये मत कैसे समझने चाहियें उसे मंत्रणा किस के साथ करनी चाहिये--मंत्रणा कै प्रकार की है और उस का क्या महत्व है । राजा को शाक्त, शैव और वैष्णव सम्प्रदायों को कैसा मानना चाहिये-किस किस की रक्षा किस किस प्रकार करनी चाहिये--भौगोलिक—विद्या द्वारा किस-किस देश का ज्ञान होना चाहिये कौन कौन से शकुन शुभ और कौन से अशुभ समझने चाहियें । राजा को किन किन उपायों से अपना उद्देश्य पूरा करना चाहिये और इन उपायों का कैसे प्रयोग करना चाहिये । उसे व्यसनों में क्या क्या उपाय करने चाहियें और कुटुम्ब को प्रसन्न कैसे रखना चाहिये । अन्त में उसे अर्थ और विद्या की वृद्धि कैसे करनी चाहिये । इन सूत्रों में गौणरीत्या निम्नलिखित विषयों का भी वर्णन है ।

१ लौकायतिक, कापालिक, जैन और बौद्ध मत ।

२ शाक्त, वैष्णव और शैव सम्प्रदाय--उनके शास्त्र, क्षेत्र और क्षेत्रपाल ।

३ प्राचीन भौगोलिक--विचार--विशेषतः भारतवर्ष का वर्णन अर्थात् उस की सीमाएं-उस के प्रदेश, उस की नदियां-उस के तीर्थ स्थान आदि ।

४ युग वर्णन ।

५ शुभ और अशुभ शकुन ।

यद्यपि जिन बातों का इन सूत्रों में वर्णन है उनके सम्बन्ध में हमारे विचार इस समय कुछ भी हों तदपि हम प्राचीन विचारों से बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं । ये मानवीय ज्ञान-विकास की प्रारम्भिक श्रेणियां हैं । इन्हें जाने बिना हमारा ऐतिहासिक ज्ञान अपूर्ण और अधूरा रहता है । जिस प्रकार प्राचीन सभ्यता और

नवीन सभ्यता में अन्तर है उसी प्रकार इन विषयों के प्राचीन और नवीन विचारों में भेद है पर यह कोई निश्चय रीति से नहीं कह सकता है कि हमारे नवीन विचार सभी ठीक हैं और प्राचीन विचार सर्वथा निकृष्ट हैं । विचारों के रूप और गति का सम्बन्ध सामयिक परिस्थिति से है। जो विचार एक दशा और परिस्थिति में परमोपयुक्त और प्रशस्त हैं वे दूसरी दशा और स्थिति में अनुपयुक्त और असङ्गत हो जाते हैं। जिस समय और जिस परिस्थिति में ये सूत्र लिखे गये थे उस समय ये नितान्त आवश्यक और उपयोगी समझे गये थे। इस समय इन का महत्व ऐतिहासिक दृष्टि से है जो एक सामान्य बात नहीं है। जो महाशय इन सूत्रों को पढ़ें उन्हें कौटिल्य अर्थशास्त्र भी अवश्य पढ़ना चाहिये क्योंकि उस में बहुत सी बातों का सविस्तर वर्णन है जिस के पढ़ने से तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थिति का संतोषदायक परिचय हो सकता है।

इन सूत्रों के अन्त में ४ परिशिष्ट दिये हैं जिन के पढ़ने से सूत्रों की बहुत सी बातें स्पष्ट हो जाती हैं।

कन्नोमल.

विषय सूची.

* ॐ *

अथ बार्हस्पत्यसूत्रम् ।

[प्रथमोऽध्यायः ।]

बृहस्पतिरथाचार्य इन्द्राय नीतिसर्वस्वमुपदिशति ।

आत्मवान् राजा ॥१॥

आत्मवन्तं मन्त्रिणमापादयेत् ॥२॥

दण्डनीतिरेव विद्या ॥३॥

धर्ममपि लोकविक्रुष्टं न कुर्यात् ॥४॥

करोति चेदाशास्यैनं बुद्धिमद्भिः ॥५॥

समानैः सेव्यः ॥६॥

स्त्रीबालवृद्धैः सह न वदेद्धर्मनीतिकृत्यानि ॥७॥

ऐन्द्रजालिकं न कुर्यात् ॥८॥

मन्त्रवादोत्सवौ च ॥९॥

आमयविषध्वंसनानि च ॥१०॥

न भस्मधारणम् ॥११॥

नाग्निहोत्रवेदपाठादीनि च ॥१२॥

न तीर्थयात्रा ॥१३॥

न राजसेवा च ॥१४॥

न स्त्रीसेवा च ॥१५॥

न म[१ख]द्यं पिबेत् ॥१६॥
ब्राह्मणं न हन्यात् ॥१७॥
स्तेयं न कुर्यात् ॥१८॥
बहु न च स्रगनुलेपौ ॥१६॥
न विषीदेत् ॥२०॥
न चातिकुप्येत् ॥२१॥
अविषये लोभमदानसंज्ञम् ॥२२॥
केदारे बीजानि वापयेत् ॥२३॥
दानं कर्त्तव्यम् ॥२४॥
तदसहिष्णुता लोभः ॥२५॥
स्तेयं लोभश्च ॥२६॥
स्वद्रव्यव्ययहेतुः कामः ॥२७॥
गुरुदेवप्राज्ञनृपादिहिंसाबुद्धिः क्रोधः ॥२८॥
स्वशिरस्ताडनं च ॥२६॥
बलादिषु च समं शत्रुं युद्धेन हन्यात् ॥३०॥
अन्याभियोधी सामदानभेदमायोपेक्षादिभिः ॥३१॥
मलवेषं न कुर्यात् ॥३२॥
मृगयातिसङ्गं च नाचरेत् ॥३३॥
स्त्रीष्वतिसङ्गादयशो व[२क]र्धते ॥३४॥
आयुश्च क्षीयते ॥३५॥
द्यूतपरतापपरापवादपातकिसमागमे समत्रपदानि परच्छिद्राणि विद्याव्यसनपरिहासेन ॥३६॥
औषधोपयोगविण्मूत्रविसर्जनकस्नानदन्तधावनमैथुनोपभोगदैवतपूजापि रहस्येन ॥३७॥

वृथा धर्मध्वजिनं न विश्वसेत् ॥३८॥

निन्देन्न च ॥३९॥

उन्मत्तजडादीन् दृष्ट्वा न हसेच्च ॥४०॥

तुल्यशीलवयोभिः क्रीडितव्यं रहस्ये ॥४१॥

गजाश्वक्रीडे व्यक्ते न द्विमूर्तम् ॥४२॥

दूषयेन्न च स्वजातिजीवत्सु ॥४३॥

अर्थेनानुरागेणाभिजन्मनौदार्येण पूर्वैर्भ[२ख]विष्यैरधिकत्व इच्छा कर्त्तव्या ॥४४॥

पूर्वाचरितं धर्ममनुजीविसख्यममात्यज्ञातिसुहृद्बान्धवान् समं पश्येत् ॥४५॥

बहिरन्तर्दण्डदानावनुजीविषु ॥४६॥

सामभेददानानि मन्त्रिषु ॥४७॥

सामभेददानार्थमायपिण्डानि ज्ञातिषु ॥४८॥

अप्रियमपि वचनं शृणुयात् ॥४९॥

दुर्दिनग्रहवैषम्यत्रिजन्मनक्षत्रे गुरुकार्यप्राप्तौ न च मङ्गलानि सेवेत ॥५०॥

एकदेशैकरूपिणीमभिजातां स्त्रियं गमयेत् ॥५१॥

अतिभेदयेन्नातिसामं नातिदानं न च स्त्रीषु दण्डो न च मायोपेक्षा कर्तव्या ॥५२॥

तासु न बहु वदेत् ॥५३॥

ग्रामया[३क]चकस्तुतमागधबन्दिनटनर्तक्युपाध्यायास्त्यवा-दघट्टविटवणिजगोपालवेश्याकुनृपेष्वनृताडम्बरं वक्तव्यः॥५४॥

संन्यासं नृपवेश्यामन्त्रवादोपजीविषु चिरं न सेवेत ॥५५॥

आत्मप्रश्नं सेवेत ॥५६॥

आयत्यादीनति न ॥५७॥

स्त्रीद्यूतपानसक्तान्न सेवयेत् ॥५८॥

पञ्च नाडिका इष्टदेवताजपादि पञ्चनाडिकायामतीतायामा-स्थानम् ॥५९॥

दश नाडिका विधिः पञ्च नाडिकाः स्नानम् ॥६०॥

त्रिनाडिका भोजनम् ॥६१॥

पञ्च नाडिका हास्यक्रीडा स्निग्धैः ॥६२॥

द्विनाडिका सन्ध्या ॥६३॥

सप्त नाडिका नृत्तादयः ॥६४॥

सप्त नाडिका मैथुन[३ख]भोजनादयः ॥६५॥

सप्त नाडिका सुप्तिः ॥६६॥

स्वनियमं कुर्यादप्रमादेन ॥६७॥

अश्वनियामक इव ॥६८॥

शिरःकम्पनास्थानेन स्वागतेन शिष्टताम्बूलदानेन ब्राह्मणो-त्तमान् ॥६९॥

दुर्ब्राह्मणं शिरःकम्पेन न सोपायनमपि ॥७०॥

समानप्रभुं विश्वेश्वरं वा स्वागतेनासनेन ।शिरःकम्पेन ताम्बू-लदानेन हास्यकथया च ॥ ७१ ॥

स्मितेन स्वागतेना+स्या+स् त्रैवर्णिकान् ॥ ७२ ॥

ईक्षणस्मितेन स्वागतेन शूद्रान्न ॥ ७३ ॥

अभीष्टद्रव्यदानेन बालवृद्धादीन् ॥ ७४ ॥

अन्त्यपाषण्डादीन् वाङ्मात्रेणापि न ॥ ७५ ॥

कार्यगुरु [४क] तयाऽनुगच्छेत् ॥ ७६ ॥

अल्पं वदेच्च योगं दद्यात् ॥ ७७ ॥

वर्णिकापरिग्रहं न कुर्याद्रहस्ये ॥ ७८ ॥

कर्मकारान्प्रति योगीनपि कार्यमविचारयेत् ॥ ७९ ॥

स्निग्धैः सह समानं वरयेन्मन्त्रित्वे ॥ ८० ॥

अन्त्यजं त्वनन्त्यजातिनम् ॥ ८१ ॥

अन्त्यजानां स्वार्थानिवेदकत्वमाज्ञाकर्त्वं च ॥ ८२ ॥

तन्नातिलालयेत् ॥ ८३ ॥

न विश्वसेच्च ॥ ८४ ॥

सर्वं ज्ञात्वा न कुर्यात् ॥ ८५ ॥

धर्मगुप्तिः गृहयात्रागुप्तिः कार्यगुप्तिः वैरगुप्तिः यशोभङ्गे सत्यमपि नेति वदेत् ॥ ८६ ॥

चिकित्सकज्योति[४ख]षमन्त्रवादिनः संग्रहेत् वृत्तशीलसम्पन्नान् ॥८७॥

सत्यमपि दुःखानर्थसाधनमपि न वदेत् ॥८८॥

पञ्चविंशतिवर्षं यावत् क्रीडाविद्यां व्यसनात् कुर्यात् ॥८९॥

अत उत्तरमर्थार्जनम् ॥९०॥

आत्मानमनृणी कुर्यात् ॥९१॥

ऋणवाञ्जायते त्रिभिः कामक्रोधलोभैः ॥९२॥

शरीरं सर्वदा रक्षेच्च ॥९३॥

नित्यकर्म न त्यजेत् ॥९४॥

जनघोषे सति क्षुद्रकर्म न कुर्यात् ॥९५॥

नष्टे न स्थातव्यम् ॥९६॥

दूरपरिहरणीयं गुरुतरमपि तद्राज्यकार्यम् ॥९७॥

कुसुमान्तान् दण्डनायकान्नवान्न सेवेत ॥९८॥

[५क]अल्पहानिः सोढव्या ॥९९॥

यथा मातङ्गचोरव्यालसर्पव्याघ्रकुलं विपिने श्मशाने वसति तस्मात्परमनागसां ज्ञातिवैरं न कर्तव्यम् ॥१००॥

एकामिषश्वानवत् राज्योपप्लवे तद्राज्यच्छेत्रम् ॥१०१॥

नीतिः किल नदीतीरतरुवत् ॥१०२॥

तन्नेहितव्यम् ॥१०३॥

भूतद्रोहिणः कुसुमान्तादयः ॥१०४॥

यशोवीर्यायुःश्रीरतिकसामन्तसेवा ॥१०५॥

कामक्रोधमदमात्सर्यपैशुन्यादीन्न कार्येत् ॥१०६॥

अरिः शुभशीलो मित्रम् ॥१०७॥

सुहृत्सु शुभशीलः शत्रुः ॥१०८॥

चन्द्रादित्ययोरेकरुचित्वाच्च [प्रख]छत्रुत्वम् ॥१०९॥

यदि चेन्न स्थितिस्तयोः ॥११०॥

ज्ञातिषु यत्र वैरं तत्कुलद्वयमासूलं नश्यति ॥१११॥

यः शास्त्रं दण्डनीतिं परित्यजत्यनर्थकः शलभा इव वह्निं प्रविशत्यज्ञानात्, इत्याह भगवानाचार्यः सुरेन्द्रगुरुः॥११२॥

इति बार्हस्पत्यसूत्रे प्रथमोऽध्यायः ॥

[द्वितीयोऽध्यायः ।]

गुणवतो राज्यम् ॥ १ ॥

विद्यागुणोऽर्थगुणः सहायगुणाश्च ॥ २ ॥

स्वकुलरञ्जनं च चारित्ररक्षणम् ॥ ३ ॥

कृषिगोरक्षवाणिज्यानि ॥ ४ ॥

सर्वथा लोकायतिकमेव शास्त्रमर्थसाधनकाले ॥ ५ ॥

कापालिकमेव कामसाधने ॥६॥

आर्हतं धर्मे ॥७॥

[६क] लौकायतिकमसेनार्थं क्षिप्रं नश्यति तत् ॥८॥

कापालिकार्हतबौद्धाश्च ॥९॥

एतेषु तिष्ठन् शलभवह्निवत् ॥१०॥

फलानि श्रोत्रसलिलकल्पानि ॥११॥

अविद्यायुक्तः पुरुषार्थं साधयितुं धर्मयुक्ते यदिच्छति तदा लौकायतिकाभिधानपाषण्डी ॥१२॥

यदा चण्डाल उदारसुरामांसादिकामेच्छुस्तदा कापालिकाभिधानपाषण्डी ॥१३॥

यदा सन्ध्योपासनाद्यग्निहोत्रादि परित्यज्याहिंसाधर्मेच्छुः तदा क्षपणकपा[६ख]षण्डी ॥१४॥

यदा वेदोक्तकर्म ज्ञानं च सर्वेश्वरं शिवं विष्णुं श्रियमपि परित्यज्य सर्वं शून्यमिति वदति तदा बौद्धाभिधानपाषण्डी॥१५

वृथा धर्मं वदत्यर्थसाधनं लौकायतिकः पिण्डादयश्चोर इति च ॥१६॥

सर्वमर्थार्थं करोत्यग्निहोत्रसन्ध्याजपादीन् ॥१७॥

स्वदोषं गूहितुं कामार्थं वेदं पठति ॥१८॥

अग्निहोत्रादीन् करोति ॥१९॥

सुरापानार्थमहिलामेहनार्थं करोति ॥२०॥

विष्णवादयः सुरापानिन इति कापालिकाः ॥२१॥

धर्मा[७क]र्थं मलपिण्डधारणाद्धर्मं वदति क्षपणकः ॥२२॥

शिवादय इति वदति क्षपणकः ॥२३॥

परापवादार्थं वेदशास्त्रधर्मादीन् पठति ॥२४॥

सर्वान्निन्दति ॥२५॥

महेश्वरविष्णवादीनपि ॥२६॥

सोऽप्यशनार्थं धर्मं वदति ॥२७॥

वदनार्थं परान् स्तौति स बौद्धः ॥२८॥

लौकायतिको मृतो भवत्यर्थकामधर्ममोक्षविहीनो नारकीच ॥२९॥

कुले च तत्कुलं तत्पुत्रपौत्रान्तरे विनश्यति ॥३०॥

कापाली स्वग्रामगृहस्वजनैः परित्यक्तः सर्वलोकनिन्दितो नारकी भवति ॥३१॥

तस्मिन्काल ए[७ख]व कुलं विनश्यति ॥३२॥

क्षपणकः स्वकुलग्रामवासिभिर्निन्दितो भवति त्रिकुलं विनश्यति ॥३३॥

बौद्धसंचितं कुलं पुत्रपौत्रकाले वा विनश्यति सुदुष्टो नारकी ॥३४॥

एवं पाषण्डसंपर्कं मनसाऽपि न कुर्यात् ॥३५॥

सुव्यवस्थितमन्त्रेण परिच्छिद्रज्ञानिना धार्मिकेण राज्यं परिपालयितुं न शक्यते ॥३६॥

ऐश्वर्यमदमत्तेन सलोभमानिना संचितं विनश्यति ॥३७॥

कार्यं निश्चित्य विषयाननुभवति यः स उत्तममर्थं साधयति ॥३८॥

चेष्टया कार्य[८क]ज्ञान्यर्थपर इति धर्मवानिति लोकैर्यथा न ज्ञायते तथा कर्त्तव्यम् ॥३९॥

ईश्वर इव चन्द्रादित्याविव ॥४०॥

स्वामिचित्तानुवृत्तिभिर्मत्यैक्यकारकमैव मन्त्रम् ॥४१॥

मन्त्रिणा स्वामिनोऽभिमतमुत्सृज्य कार्यं वक्तव्यम् ॥४२॥

नीतेः फलं धर्मार्थकामावाप्तिः ॥४३॥

धर्मेण कामार्थौ परीक्ष्यौ ॥४४॥

धर्मं धर्मेण ॥४५॥

अर्थमर्थेन ॥४६॥

कामं कामेन ॥४७॥

मोक्षं मोक्षेण ॥४८॥

गुरुशासनं कार्यमेव वि[दख]द्धं धर्मेणापि पाण्डवविवाह इव, अर्जुनस्य संन्यास इव, व्यासविधवागमनमिव, कर्णोत्पादनमिव, राममातृवधमिवेत्यादि ॥४९॥

नीतिवियुक्तः पुत्र इव शत्रुः ॥५०॥

बालं दुष्टं साहसिकमज्ञातशास्त्रमन्त्रे प्रवेशयेत् ॥५१॥

मूढा दुराचारास्तीक्ष्णा आत्मबुद्धयः क्षिप्रक्रुद्धा बाला मन्त्रयोग्या न ॥५२॥

सर्वरत्नान्यपि दीयन्तां स्वकार्यजीवयशोरक्षणे ॥५३॥

मन्त्रकाले न कोपयेत् ॥५४॥

धर्मप्रधानं पुरुषा[हक]र्था न ॥५५॥

अधर्मेण भुज्यमानं सुखमसुहृत् ॥५६॥

स्थितिर्वर्धनम् ॥५७॥

अपथ्यभोजनो मृत्युप्रीतिकर इव (सत्यव्रतः शास्त्रेषु निष्ठितः पुरुषः सागरमपि शोषयेत्) ॥५८॥

क्रुद्धो यदि हतपौरुषास्त्रस्ता भवन्ति ॥५९॥

एक एव बहून् दुर्जनो नाशयति ॥६०॥

पौरुषे निष्ठितो देवो ॥६१॥

यस्य स्वदाररतिः यस्यात्मदमने शक्तिस्तेन सदृशो न ॥६२॥

सज्जनो न भयाद् व्यतिवर्तते ॥६३॥

तस्मिन्काले हितमवक्तव्यमवाक्यज्ञैः सुहृद्भिः ॥६४॥

उत्सिक्तहृदयं धर्मे चलि[९ख]तगौरवमजितात्मानं शासितुं नोत्सहेत ॥६५॥

दारुणकर्मभिः श्रान्तमज्ञाननिद्रया सुप्तं धर्मवाक्यानिलैः शीतैर्बालिशं प्रबोधयेत ॥६६॥

दुर्जनमध्ये सूर्यवत् प्रकाशते सुजनः ॥६७॥

अधर्मंव्यवस्थितान्न्यायवृत्तेन वारयेत् ॥६८॥

अधर्मं नार्जयेत् ॥६९॥

अकीर्तिं नार्जयेत् ॥७०॥

न मारयेत् ॥७१॥

बोला निवार्यतां धर्मपाठाङ्कुशेन गज इव ॥७२॥

गुरुवचनमलङ्घनीयं नयानुगतं चेत् ॥७३॥

गुरुमपि नीतिवियुक्तं निरासयेत् ॥७४॥

गुरुराहेति ॥७५॥

इति बार्हस्पत्यसूत्रे द्विती[१०क]योऽध्यायः ॥

[तृतीयोऽध्यायः ।]

जितक्लेशस्य पौरुषम् ॥१॥

देशान्तरवासेन जितक्लेशो भवति ॥२॥

सर्वबलकालदेशसामप्रकृतिसहायामवयसां ज्ञानं कार्यम् ॥३॥

उपवासादिसहिष्णुत्वं च ॥४॥

सुगन्धवासान् कोशान् कुर्यात् ॥५॥

बहुवादं मधुरमेव कुर्यात् ॥६॥

शमबुद्धीन् मणीन् सर्वान् सदाराधयेत् ॥७॥

नवानि मन्त्राणि विद्यात् ॥८॥

त्रिविधानि शाक्ता वैष्णवा शैवानि तत्[१०ख]प्रभिन्नानि ॥९॥

मोक्षपुर्या द्वारं त्रयम् ॥१०॥

शाक्ता वैष्णवाः शैवाः ॥११॥

पोतयानमार्गवच्छाक्तम् ॥१२॥

महापथवद्वैष्णवम् ॥१३॥

केवलप्रधानिकमश्वरथयानवत् ॥१४॥

लोकायतिकक्षपणकबौद्धादि बहुशार्दूलदुष्टमृगाकीर्णशून्याटवीगुहामार्गवत् ॥ १५ ॥

एतन्निरूप्यैकमाश्रयेत् ॥ १६ ॥

ज्योतिर्नाथास्थितं सदा निरूपयेत् ॥ १७ ॥

चातुर्वर्ण्यं रक्षेच्च ॥ १८ ॥

औषधानि सेवेत च ॥ १९ ॥

बलवर्णतेजोमदबुद्धिशौर्यदयावर्धनानिदोषधातुशमानि॥२०॥

दानमानालङ्कारविद्याभिः सिद्धिं लभेत ॥ २१ ॥

अष्टादश तीर्थानि निरूपयेत् ॥ २२ ॥

षट् प्रकृतयस्तीर्थं शत्रुमित्रोदासीना [११क] श्च ॥ २३ ॥

अन्तःशत्रुरन्तर्मित्रोऽन्तरुदासीन इति तेऽप्यनुजीविसखि-

सुहृदश्च ॥ २४ ॥
भार्यापुत्रबान्धवाश्च ॥ २५ ॥
अन्येऽपि देवालयनृत्तयागभूमिसन्ध्यावापीचतुष्पथपाषण्डा-
लयापणबालविद्यापाठदेशखलूरीशाली चन्द्रदर्शनाद्युत्स-
ववेश्यागृहसमुद्रतीरयतिसंनिधिराज्यसन्धिसुराविक्रयस्थान-
पान्थनिवासाश्च ॥ २६,२७ ॥
शृङ्गारवेषं कुर्यात् ॥ २८ ॥
पुरद्वारे सर्वनिरोधनं कार्य्यम् ॥ २९ ॥
सर्वान्न निषेध[११ख]येच्च ॥ ३० ॥
इतिहासपुराणानि मानयेत् ॥ ३१ ॥
तत् पाकांश्च ॥ ३२ ॥
शाक्तागमांश्च ॥ ३३ ॥
वैखानसागमांश्च ॥ ३४ ॥
सांख्यांश्च ॥ ३५ ॥
शैवांश्च ॥ ३६ ॥
सर्वानपि स्वाध्यायं कुर्यात् कारयेच्च ॥ ३७ ॥
ब्राह्मणं न हन्याद्दोषदुष्टमपि ॥ ३८ ॥
निर्दयस्य दया कर्तव्या ॥ ३९ ॥
ग्रामणीन् सम्भावयेत् ॥ ४० ॥
नगरेन्द्राँश्च ॥ ४१ ॥
दुर्बलमपि साम कुर्यात् ॥ ४२ ॥
दानेन बहु ॥ ४३ ॥
न स्वल्पश्च ॥ ४४ ॥

नोत्तमेषु गुणबाहुल्यक्रमेण ॥ ४५ ॥

अक्षैर्दीव्यात् ॥ ४६ ॥

नैव दीव्याच्च ॥ ४७ ॥

सर्पादीन् हन्यात् ॥ ४८ ॥

उत्तमाम्नानामन्त्रासिद्धान्[१२क]विद्याबहुलान् द्विजान् मानयेत् ॥ ४९ ॥

अन्यराष्ट्रजान् द्विजान् क्षत्रबन्धून् कुमारसामन्तादीनात्मवत् सम्भावयेद्भोजनाच्छादनादिभिः ॥ ५० ॥

शरणागतं सर्वपातकयुक्तमपि रक्षेत् ॥ ५१ ॥

दुष्टनिग्रहं कुर्यात् ॥ ५२ ॥

शिष्टपरिपालनञ्च ॥ ५३ ॥

ग्रामं न बाधेत ॥ ५४ ॥

नगरञ्च ॥ ५५ ॥

देवालयानि च ॥ ५६ ॥

आसवानि सेवयेत् ॥ ५७ ॥

अति न ॥ ५८ ॥

मांसानि च ॥ ५९ ॥

घृणा कार्या ॥ ६० ॥

बौद्धादयो न ॥ ६१ ॥

अग्राह्या न ॥ ६२ ॥

मत्तकाशिन्यः सेव्याः ॥ ६३ ॥

पञ्चाशत्कोटियोजना पृथिवी ॥ ६४ ॥

सप्तद्वीपवती च ॥ ६५ ॥

सप्तसमुद्रावृता च ॥ ६६ ॥

कर्मभोगाति[१२ख]भोगदिव्यशृङ्गारसिद्धकैवल्या इति द्वी-
पाभिधानाः ॥ ६७ ॥
मध्यः कर्मभूमिः ॥ ६८ ॥
तन्मध्ये मेरोराजम्बूः ॥ ६९ ॥
तत्रोत्तरे हिमवान् ॥ ७० ॥
तस्य दक्षिणे नवसाहस्री भूः ॥ ७१ ॥
तत्र दाक्षिणात्यो भारतः खण्डः ॥ ७२ ॥
तत्र साक्षाद्धर्माधर्मफलाः सिध्यन्ति ॥ ७३ ॥
तत्र दण्डनीतिः ॥ ७४ ॥
पूर्वभारतीयैःपठितव्यः भविष्यैर्वर्तमानैश्च चातुर्वर्णिकैश्च॥७५
दण्डनीत्या भगवान् भानुर्नृपतिः ॥ ७६ ॥
वायुश्च सर्वे देवाश्च ॥ ७७ ॥
जन्तवश्च ॥ ७८ ॥
सहस्रयोजना वदरिकासेत्वन्ता ॥ ७९ ॥
द्वारकादिपुरुषोत्तम[१३क]सालग्रामान्ता सप्तशतयोजना॥८०
तत्रापि रैवतक विन्ध्यसह्यकुमारमलयश्रीपर्वतपारियात्राः
सप्तकुलाचलाः ॥ ८१ ॥
गङ्गासरस्वतीकालिन्दीगोदावरीकावेरीताम्रपर्णी घृतमाला
[:]कुलनद्यश्च ॥ ८२ ॥
अष्टादश विषयाश्च ॥ ८३ ॥
अष्टादश सागरा नृपाः ॥ ८४ ॥
अष्टादश पार्वतीयाः ॥ ८५ ॥
रामसृष्टिश्चत्वारिंशच्छतं दक्षिणोत्तरे आसह्यं द्वादश विश्वा-

मित्रसृष्टिरेकादश ॥ ८६ ॥

नेपालं चतुःशतम् ॥ ८७ ॥

पूर्वसमुद्रतीरे वरुणतःसमुद्रान्तमष्टयोज[१३ख]ना ॥ ८८ ॥

पञ्चशतद्वितयमुत्तरलाटं पूर्वलाटश्च ॥ ८९ ॥

काशीपाञ्चालद्वितयमशीतिः ॥ ९० ॥

केकयसृञ्जयं षष्टिः ॥ ९१ ॥

मात्स्यमागधं शतम् ॥ ९२ ॥

मालवशकुन्तमशीतिः ॥ ९३ ॥

कोसलावन्तिःषष्टिः ॥ ९४ ॥

सैह्य वैदर्भद्वितयं शतद्वितयम् ॥ ९५ ॥

वैदेहकौरवं शतम् ॥ ९६ ॥

काम्बोजदशार्णमशीतिः ॥ ९७ ॥

एते महाविषयाः ॥ ९८ ॥

एते खलु चतुरश्राः ॥ ९९ ॥

आरट्टवाह्लीकौ दक्षिणोत्तरतः शतमात्रौ पूर्वपश्चाद् द्वादशौ ॥ १०० ॥

शाकसौराष्ट्रौ चतुरश्रौ चत्वारिंशत् ॥ १०१ ॥

अङ्गवङ्गकलिङ्गा[१४क]ःशटमात्राश्चतुरश्राश्च ॥ १०२ ॥

काश्मीरहूणाम्बष्ठसिन्धवः शतमात्राश्चतुरश्राश्च ॥ १०३ ॥

किरातसौवीरचोलपाण्ड्या उत्तरे दक्षिणे स्थिताः शतात् परं षष्टिमात्राः ॥ १०४ ॥

यादवकाञ्चीविषयं चत्वारिंशच्छतमात्रम् ॥ १०५ ॥

एते उपविषयाः ॥ १०६ ॥

सप्तकोङ्कणाश्चतुःशतमात्रा द्वादश ‡षट्राष्ट्रौ‡च ॥ १०७ ॥

एते अनूपाः ॥ १०८ ॥

सह्याद्रौ चत्वारो गिरिविषयाः ॥ १०९ ॥

श्रीपर्वते द्वयम् ॥ ११० ॥

रैवतक एकः ॥ १११ ॥

विन्ध्ये पञ्च ॥ ११२ ॥

कुमारे एकम् ॥ ११३ ॥

[१४ख]महेन्द्रे त्रयम् ॥ ११४ ॥

पारियात्रे त्रयम् ॥ ११५ ॥

सर्वे दक्षिणोत्तरतः पञ्चाशन्मात्राः पूर्वतःपश्चात् पञ्चयोजनाः समाः ॥११६॥

म्लेच्छे यवनविषयाः पार्वतीयाः ॥ ११७ ॥

ग्रामनगरोद्यानादिभिरलंकृताः पुण्यक्षेत्रादिभिश्च ॥११८॥

अष्ट वैष्णवक्षेत्राः ॥ ११९ ॥

बदरिकासालग्रामपुरुषोत्तमद्वारकाबिलवाचलानन्तसिंह श्रीरङ्गाः ॥ १२० ॥

अष्टौ शैवाः ॥ १२१ ॥

अविमुक्त[क]गङ्गाद्वारशिवक्षेत्ररामेयमुनाशिवसरस्वतीभव्य·शार्दूलगजक्षेत्राः ॥ १२२ ॥

शाक्ता अ[१५ क]ष्टौ च ॥ १२३ ॥

‡ओघ्वीण‡जालपूर्णकामकोल्लश्रीशैलकाञ्चीमहेन्द्राः ॥१२४

एते महाक्षेत्राः ॥ १२५ ॥

सर्वसिद्धिकराश्च ॥ १२६ ॥

वन्ध्याश्च ॥ १२७ ॥

विन्ध्ये नित्यं वसति दुर्गा भद्रकाली च ॥ १२८ ॥

कुमारे कुमारो वसति नित्यम् ॥ १२६ ॥

सह्ये गणपतिः ॥ १३० ॥

रैवतके शास्ता ॥ १३१ ॥

महेन्द्रे गरुडः ॥ १३२ ॥

पारियात्रे क्षेत्रपालः ॥ १३३ ॥

कर्मभूमौ भारते मनुष्यैर्बहवो देवाः ॥ १३४ ॥

सुरासुरयक्षराक्षसभूतप्रेतविनायककूश्माण्डा विकृताननाः ॥ १३५ ॥

निरुद्धा भारवेषाः ॥ १३६ ॥

सौम्यभैरवा योगिन्यश्च नागाश्च[१५ख]मानवैः सह रूपरमा असंख्याताः संचरन्ति ॥ १३७ ॥

मानवैः कृतपालनाश्च ॥ १३८ ॥

तस्मिन्नमृतमया औषधाः सन्ति ॥ १३९ ॥

अत्र युगसंख्या कृतत्रेताद्वापरतिष्याश्च ॥ १४० ॥

कृते ज्ञानिनः ॥ १४१ ॥

दण्डनीतिकोविदाः ॥ १४२ ॥

त्रेतायां कर्मिणः नीतिविशारदाः ॥ १४३ ॥

द्वापरे तान्त्रिकानुसारा घना रसाश्च ॥ १४४ ॥

नीतिकोविदाश्च ॥ १४५ ॥

तिष्ये पादे ज्ञानकर्मा घना दण्डनीतिकोविदा नराः ॥१४६॥

सदुत्तरं विरुद्धधर्मवर्णवेषा दण्डनीतिवर्जिताः ॥ १४७ ॥

पश्यन्ति प्रजा अनृतवादतत्पराश्चेत्याह[१६क]आचार्यः ॥ १४८ ॥

इति बार्हस्पत्यसूत्रे तृतीयोऽध्यायः ॥

[चतुर्थोऽध्यायः ।]

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थानम् ॥ १ ॥

धर्ममर्थञ्च चिन्तयेत् ॥ २ ॥

कुक्कुटशब्दं शुभम् ॥ ३ ॥

गजादिदर्शनञ्च ॥ ४ ॥

गजशब्दमङ्गलस्तुतिवेदपाठनञ्च ॥ ५ ॥

देवतापुण्यकथा च ॥ ६ ॥

राजन्यस्मरणञ्च ॥ ७ ॥

नेत्राञ्जनञ्च ॥ ८ ॥

आदर्शदर्शनञ्च ॥ ९ ॥

अलङ्कारयेत् ॥ १० ॥

ताम्बूलचर्वणञ्च ॥ ११ ॥

कर्पूरचन्दनागरुधूपञ्च ॥ १२ ॥

शङ्खकाहलविषाणच्छिन्नवेणुवीणातन्त्रीमृदङ्गपणवाः ॥१३॥

तूर्यघोषाश्च ॥ १४ ॥

दिव्यप्रमदादर्शनञ्च ॥ १५ ॥

[१६ ख]मागधभिन्नषड्जञ्च ॥ १६ ॥

जातिस्वरश्च ॥ १७ ॥

सर्पिषि सितपुष्पाणि ॥ १८ ॥

मन्त्रतृप्तो वह्निः शतार्चिर्विष्णुलिङ्गधूमयुक्तो भवति ॥१९॥

तदशुभं गवां संदर्शनम् ॥ २० ॥

गृध्रसंदर्शनञ्च ॥ २१ ॥

सन्ध्याज्वलनञ्च ॥ २२ ॥

विरुद्धशिवारुतं च ॥ २३ ॥
क्रव्यादमृगाणां शब्दो ग्रामपुरद्वारे वा श्रूयते ॥ २४ ॥
देवताप्रतिमास्वेदश्च यस्मिन्दृश्यते तत्र प्रायश्चित्तमन्यत्र यानमेव प्रतिकारो नास्ति ॥ २५ ॥
अवश्यनिरूपणीयान्येतानि कर्माणि ॥ २६ ॥
मन्त्रमू [१७क]लो विजयः ॥ २७ ॥
त्रिविधाः पुरुषा उत्तमाधममध्यमाः ॥ २८ ॥
मन्त्रेऽपि ॥ २९ ॥
बन्धुभिर्बान्धवैर्हितैर्बहुश्रुतैर्धीरैः सह यत् कर्मारभते तदुत्तमम् ॥ ३० ॥
धर्मद्विविधे गुरौ भक्तिश्च ॥ ३१ ॥
अर्थपरैः सह मन्त्रयित्वा य आरभते स उत्तमः ॥ ३२ ॥
गुणदोषागमं निश्चित्य मौर्ख्यबाहुल्याद् य आरभते सोऽधमः ॥३३॥
ऐकमत्येन दण्डनीतिनेत्रेण धीरैर्मन्त्रिभिर्यो मन्त्रः स उत्तमः ॥ ३४ ॥
पूर्वं बहुबुद्धयः पश्चादेकमतयो भवन्ति यत्र स मध्यमः ॥३५॥
[१७ख]यत्र कलहम्भर्त्सनश्च एकस्य धर्म एकास्यार्थे स्त्रीबालवृद्धैः सह एकस्य रुदितमेकस्य क्रोधो यस्मिन् सोऽधमः ॥ ३६ ॥
पूर्वं स्वामिना कार्यनिवेदनम् ॥ ३७ ॥
पुनर्वचसा कर्मणा मनसाञ्जलिना दण्डप्रणामेन यथागुरुत्वं स्वामिनमभिवन्दयेत् ॥ ३८ ॥
वृद्धो वैश्रवणो वाचस्पतिर्वा यस्यान्नं नाभुञ्जते तं वन्देत्॥३९॥

यत्पुनर्यथाक्रममेकैकस्य मतं श्रोतव्यम् ॥ ४० ॥

स्वामिनं प्रसाद्य कार्यं कल्पयितव्यम् ॥ ४१ ॥

पूर्वं स्वामि[१८क]गुणं संकीर्त्य स्वामिदोषं परदोषञ्च मध्यस्थदोषञ्च मन्त्रयित्वा पुनः स्वामिगुणसंस्थापनं कुर्यात् ४२

पुनः कार्याण्युपायानि निरूप्य स्वामिनं प्रसाद्य कार्यं कल्पयितव्यम् ॥ ४३ ॥

प्रमत्तेष्वभियुक्तेषु दैवोपहतेषु च न सिध्यन्ति विक्रमाः ॥४४॥

अप्रमत्तं धर्मज्ञं जितेन्द्रियं विजिगीषुं बलिषु जातकोपं दुराधर्षं प्रति विक्रमो न कार्यः ॥ ४५ ॥

शास्त्रवित् कथं कार्यं न प्रजानातीति न वदेत् ॥ ४६ ॥

बलिष्ठान् शत्रून् कामादीन् ये जयन्ति ते सर्वानरीञ्जयन्ति ४७

[१८ख] पूर्वमुपकारं न कारयेत् ॥ ४८ ॥

उपकारं नियतं कुर्याच्च ॥ ४६ ॥

नाभाद्व्यिसनं पूर्वं ज्ञात्वा व्यसनप्रतीकारं कार्यमिति गुरुराह ॥ ५० ॥

इति बार्हस्पत्यसूत्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥

[पञ्चमोऽध्यायः ।]

चत्वार उपायाः ॥ १ ॥

त्रयश्च ॥ २ ॥

मायोपेक्षा वधश्च ॥ ३ ॥

स्वरिषु साम ॥ ४

शङ्कितेषु सामभेदौ ॥ ५ ॥

लुब्धेषु सामदानभेदाः ॥ ६ ॥

कष्टेषु सामभेददानमायोपेक्षावधाः ॥ ७ ॥

साम पूर्वं प्रयोक्तव्यम् ॥ ८ ॥

[१९क] मनसोऽभिप्रायं वाचः प्रीतिकर्म च ॥ ९ ॥

ज्ञातीनां ज्ञातयो व्यसने हृष्यन्ति ॥ १० ॥

ज्ञातिं ज्ञातयः प्रच्छन्नहृदयाः क्रूरा उपद्रवन्ति ॥ ११ ॥

सर्वभयेषु ज्ञातिभयं घोरम् ॥ १२ ॥

गोषु पयः ब्राह्मणे कोपश्च ॥ १३ ॥

स्त्रीषु चापलं दूरत्वं ज्ञातिषु सौहृदं पत्रजलविन्दुवत् ॥ १४ ॥

हितं गुरुजनवाक्यं शास्त्रचोदितं च ये न शृण्वन्ति कालचोदिताः तस्मात् तान् सुपरिहृत्यान्यत्र वसेत् ॥ १५ ॥

लोकविरुद्धं नाचरेत् ॥ १६ ॥

मन्त्र[१९ख] विद्यागुह्यपक्षेषु ग्रहान् बान्धवान् कुशलादन्यत्र न कार्यं व्यसनानि च ॥ १७ ॥

दुर्जनं परिहृत्य वक्तव्यं विद्यायुक्तोऽपि गृहाहिरिव ॥ १८ ॥

शत्रुपक्षादागतं न विश्वसेत् ॥ १९ ॥

गुणतः संगृह्णीयात् ॥ २० ॥

भावैः परीक्षयेत् ॥ २१ ॥

वीरणसारैः सह सम ज्ञायते बुद्धिमविज्ञाते सहसा परीक्ष-[२०क] येत् ॥ २२ ॥

इङ्गितैर्ज्ञातुं शक्यते ॥ २३ ॥

प्रसन्नो न ॥ २४ ॥

अशङ्कितमति[:]स्वस्थः ॥ २५ ॥

अकोपश्च बालादयोऽपि विवृण्वन्ति हि तम् ॥ २६ ॥

स्वकुलस्य विनाशं ज्ञात्वा बुद्धिमाँस्तत्र शत्रुपक्षमपि न युक्त-

माश्रयेत् ॥ २७ ॥

हृदये यथावच्छुभाशुभं पूर्वमुदेति न दुष्टाचारः सर्वत्र-कारयेत् ॥ २८ ॥

चपला न बहुमान्याः ॥ २९ ॥

इत्याहाचार्यो बृहस्पतिः ॥ ३० ॥

इति बार्हस्पत्यसूत्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥

[षष्ठोऽध्यायः ।]

[२०ख]देशकालयोग्यं कर्म नयानयौ च वेदयेत् ॥ १ ॥

विपरीतं न वेदवीर्यदर्पेण ॥ २ ॥

हितानि निरूपयेत् ॥ ३ ॥

नमो मन्त्रिभिर्निरूप्य कार्यते ॥ ४ ॥

बुद्धिजीवनैरमात्यैः सह कर्यमकायश्च निरूपयेत् ॥ ५ ॥

अहितं विकारं यस्य प्रतिभाति स मन्त्रयोग्यः ॥ ६ ॥

अर्थमार्जयेत् ॥ ७ ॥

यस्यार्थराशिरस्ति तस्य मित्राणि धर्मश्च विद्या च गुणविक्रमो च बुद्धिश्च ॥ ८ ॥

अधनेना[२१क] र्थमार्जयितुं न शक्यते गजोऽगजेनेव॥९॥

धनमूलं जगत् ॥ १० ॥

सर्वाणि तत्र सन्ति ॥ ११ ॥

निर्धनो मृतश्चण्डालश्च ॥ १२ ॥

एवं धर्ममूलश्च विद्यामार्जयेत् ॥ १३ ॥

विद्यामूलं जगत् ॥ १४ ॥

विद्या पुनः सर्वमित्याह गुरुः ॥ १५ ॥

इति बार्हस्पत्यसूत्रे षष्ठोऽध्यायः ॥

बार्हस्पत्यसूत्रों

का

हिंदी अनुवाद ।

पहला अध्याय,

बृहस्पति आचार्य, इन्द्र को नीति शास्त्र के सिद्धान्तों का (इस प्रकार) उपदेश करते हैं:—

१ राजा को आत्मसंयमी होना चाहिये अर्थात् उसे अपनी विषयेन्द्रियों पर पूरा अधिकार रखना चाहिये ।

२ ऐसा मंत्री बनावे जिसे अपने ऊपर पूरा अधिकार हो अर्थात् जो आत्मसंयमी हो ।

३ (राजा की) विद्या दण्डनीति ही है ।

४ विरुद्ध धर्म न करे ।

५ यदि करे तो बुद्धिमान् पुरुषों की अनुमति होने पर करे ।

६ सेवा में समान गुणवाले मनुष्य रखने चाहिये ।

७ स्त्री, बालक, तथा वृद्ध—इनके साथ धर्म और नीति के विषय में वादविवाद न करे ।

८ ऐन्द्रजालिक कार्य न करे ।

९ और न मंत्र प्रयोग और उत्सव ।

१० और न रोग निवारण और विष-विध्वंस सम्बन्धी कार्य करे।
११ न संन्यासी के सदृश देह में भस्म धारण करे।
१२ और न अग्निहोत्र वेदपाठ आदि।
१३ न तीर्थ यात्रा।
१४ और न राज सेवा।
१५ और न स्त्री-सेवा।
१६ न मदिरा पीवे।
१७ न ब्राह्मण का वध करे।
१८ न चोरी करे।
१९ न बहुत शृङ्गार लेपादि करने में ही लगा रहे।
२० न निराश और उदास होवे।
२१ न अधिक कोप करे।
२२ जिसे अदान कहते हैं वह अनवसर पर लोभ है। अभिप्राय यह मालूम होता है कि अनवसर पर का दान, अदान अर्थात् नहीं दान करने के बराबर है। सूत्र की संस्कृत कुछ अशुद्ध है।
२३ खेत में ही बीज बोवे। आशय यह है कि बंजर भूमि आदि में बीज को बरबाद न करे।
२४ दान करना चाहिये।
२५ उस की पराङ्मुखता अर्थात् अप्रीति लोभ है।
२६ चोरी करना भी लोभ है।
२७ द्रव्य के क्षय होने का कारण काम है अर्थात् विषय भोगादि की इच्छा।
२८ गुरु, देव, पंडित, राजा आदि को पीड़ा पहुंचाने की बुद्धि

का नाम क्रोध है ।

२६ और अपना शिर पीटना है ।

३० सेनाबल आदि में समान शत्रु को युद्ध करके मारे ।

३१ दूसरों पर आक्रमण करते हुये साम, दान, भेद, माया, उपेक्षा आदि उपायों से काम ले ।

३२ मैला वेष न करे अर्थात् मैलाकुचेला हाबूडा सा न रहे।

३३ और शिकार में अत्यन्त आसक्त न होवे ।

३४ स्त्रियों में अधिक आसक्त रहने से अपयश बढता है यानि बदनामी होती है ।

३५ आयु भी क्षीण होती है ।

३६ जूआ खेलने वालों, दूसरों को दुःख पहुंचानेवालों तथा दूसरों की निन्दा करने वालों के सङ्ग में दूसरों के दोष विद्याचातुर्य तथा हास्यव्यवहार द्वारा गुप्त रीति से कहने चाहिये ।

३७ औषध खाना, मलमूत्र त्याग करना, स्नान करना, दाँत धोना, मैथुन करना, देवताओं की पूजा करना—ये सब काम छिपकर करने चाहियें—सब के सामने नहीं ।

३८ वृथा धर्म की ध्वजा उड़ानेवाले का अर्थात् नकली धर्मात्मा का विश्वास न करे ।

३९ निन्दा भी न करे ।

४० और उन्मत्त (पागल) और बेबकूफ आदमियों को देखकर न हंसे ।

४१ समान उमर और चरित्र वालों के साथ एकान्त में क्रीड़ा (खेलकूद मनोविनोद) करे।

४२ हाथी घोड़ों का खेल सब के सामने करे लेकिन मन लगा कर करे–द्विविध न हो यानि बंटेहुये चित्त से यह कार्य न करे।

४३ अपनी जाति के जीवों को दुःख न दे।

४४ धन, लोकप्रियता, कुलीनता और चित्तौदार्य में अपने पहले पिछलों से अधिक होने की इच्छा रखनी चाहिये।

४५ परंपरा प्राप्त धर्म, अपने आश्रय में रहने वालों की प्रीति, मंत्री, जातिवाले, मित्र तथा बान्धवों को एकसा देखे।

४६ आश्रय में रहने वालों को भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार का दण्ड और दान दिया जाय।

४७ मंत्रियों के साथ साम, दान, भेद का बर्ताव किया जाय।

४८ जाति वालों के साथ साम, भेद, और दान के लिये आमदनी बतादी जाय।

४९ अप्रिय वचन को भी सुने।

५० (नीचेलिखे) अवसरों पर आनन्द मङ्गल उत्सवादि की धूम धाम न करेः—विषमग्रह होना, तीन जन्मदिनों के नक्षत्रों का रहना, भारी काम होना, बुरा दिन होना यानि बहुत गर्मी, सरदी अथवा वर्षा होना।

५१ अपने देश की, अपनी जाति की और उच्चकुल की स्त्री के साथ गमन करे। आशय विवाह करने का मालूम होता है।

५२ अधिक भेद का प्रयोग करे, लेकिन अधिक साम और दान का नहीं और न स्त्रियों में दण्ड का प्रयोग करे, और न माया (छल, कपट) और उपेक्षा (लापरवाही) का।

५३ उनके बीच में बहुत न बोले।

५४ ग्राम के याचकों, भाटों, गवइयों नटों, नाचनेवालियों, अध्यापकों, झूठों, लड़कों, भडुओं, व्यापारियों, ग्वालाओं, वेश्याओं और नीच राजाओं के बीच झूठा आडम्बर कहना अर्थात् रचना चाहिये ।

५५ संन्यासी, राजा, वेश्या, मंत्र प्रयोग करने वाला आश्रय में रहने वाला-इन के साथ दीर्घकाल तक न रहे ।

५६ ऐसे मनुष्य का सङ्ग करे जिस में आत्मगौरव 'हेअथजावो अपने प्रभु (स्वामी) की सेवा करे ।

५७ आनेवाली बातों पर (आशादी पर) अधिक ध्यान न दे उन पर बहुत भरोसा न करे ।

५८ स्त्री,जूआ और मदिरापान में आसक्त मनुष्यों का सङ्ग न करे।

५९ पांच घड़ी इष्ट देवता का जपादि करे, पांच घड़ी बीतने पर सभा स्थान पर बैठे ।

६० दश घड़ी (चार घण्टे) न्याय करने का कार्य करे । पांच घड़ी स्नान (आदि) में लगावे ।

६१ तीन घड़ी भोजन आदि में लगावे

६२ पांच घड़ी इष्ट मित्रों के साथ हंसीखेल [मनोरञ्जन] में रहे।

६३ दो घड़ी सन्ध्यापूजन करे ।

६४ सात घड़ी नाचरंग में लगावे ।

६५ सात घड़ी मैथुन (विषय भोग) भोजनादि में लगावे ।

६६ सात घड़ी सोवे ।

६७ अपने नियम का विना भूल चूक के पालन करे ।

६८ जैसे घोड़ा हांकने वाला करता है ।

६९ ऊंचे ब्राह्मणों का अभिवन्दन शिर हिलाने,स्थान देने, स्वा-

गत कहने और ताम्बूल देने से करे।

७० नीच ब्राह्मण यदि भेट लेकर भी आया हो तो उस के लिये शिर न हिलावे।

७१ समान वैभव वाले राजा तथा सम्राट का अभिवन्दन स्वागत, आसन, शिरः कम्प, ताम्बूलदान एवं हास्यप्रद वार्तालाप से करे।

७२ तीनों वर्णवालों को कुछ मुस्कराकर स्वागत कहना और देखकर अभिवादित करे।

७३ शुद्रों के लिये मुस्कराहट और दृष्टिपात द्वारा स्वागत नहीं है।

७४ बालक वृद्धादि को उनकी मन पसन्द वस्तु देवे।

७५ नीच जाति और पाषण्डी मनुष्यों से बात भी न करे।

७६ उन से कार्य की आवश्यकतानुसार मिले।

७७ थोड़ा बोले और काम बतादे।

७८ गुप्तरीति से स्वांग न बने अथवा तीन वर्णों से रहस्य में न मिले। इस सूत्र की संस्कृत अशुद्ध है।

७९ काम करने वालों (मजदूरादि) तथा योगियों के साथ भी कार्य का विचार न करे अर्थात् उनके साथ कार्य करने या न करने का सलाह मश्विरा न करे।

८० मित्रों में से समान मित्र को मंत्रणा के लिये चुने।

८१ यदि नीच जाति हो तो ऐसे को ले जो नीच जाति न हो।

८२ नीच जाति के मनुष्यों के लक्षण हैं—अपना स्वार्थ न बताना और आज्ञापालन करना।

८३ उनकी अधिक लालना न की जाय।

८४ और न विश्वास किया जाय।

८५ सब जानकर भी न करे।

८६ धर्म, गृह, यात्रा, कार्य, वैर—इन्हें गुप्त रखे। यश भङ्ग होने पर (यानि बेइज्जती पर), सत्य हो तब भी न कहे कि यह सत्य है।

८७ सच्चरित्र और शीलसम्पन्न वैद्य, ज्योतिषी और मंत्र प्रयोग करने वालों से मिले जुले।

८८ जिस सत्य से दुःख और अनर्थ होता हो उसे न कहे।

८९ पच्चीस वर्षतक क्रीड़ा विषयक विद्याका अभ्यास मन लगाकर करे।

९० इसके पीछे धन का उपार्जन करे।

९१ अपने को ऋणी होने से दूर रखे।

९२ काम, क्रोध, लोभ—इन तीनों से (मनुष्य) ऋणी हो जाताहै।

९३ शरीर की रक्षा सदैव करे।

९४ नित्य कर्म को न छोड़े।

९५ लोगों में हल्ला होने पर छोटे से काम को छोड़दे।

९६ नष्ट हुये (कार्य) पर अड़ा न रहे, अर्थात् जो चीज नष्ट होगई उसपर दृढ न रहे।

९७ यदि वह बड़ा राज्यकार्य है तब भी वह दूर से त्याग करने योग्य है।

९८ कुसुमान्त नये दण्ड नायकों को (सेनापतियों को) सेवा में न ले।

९९ थोड़ी हानि सहन कर लेनी चाहिये। आशय यह मालूम होता है कि थोड़े से कसूर पर सेनापति को निकाल न देना चाहिये।

१०० जैसे जंगल और श्मशान में हाथी, चोर, व्याल सर्प, व्याघ्रों के झुंड अत्यन्त छोटे और अहिंसक जन्तुओं के साथ रहते हैं वैसे ही जाति का वैर न करना चाहिये।

१०१ राज्य में उपद्रव के समय, राज्य क्षेत्र, कुत्तों के बीच में मांस के एक टुकड़े के, समान है।

१०२ नीति, नदी तीर के वृक्ष के समान है (जिस की स्थिति कुछ नहीं है)

१०३ इसकी (नीति की) इच्छा न करनी चाहिये। आशय यह मालूम होता है कि धर्म नित्य स्थायी है उसी पर रहना चाहिये। नीति कार्यसाधन के लिये की जाती है, पर वह स्थायी नहीं है। वह नदी तीर के वृक्ष के समान अस्थिर है। उसका आश्रय लेने की इच्छा न की जाय–धर्म पर ही आरूढ रहना चाहिये।

१०४ कुसुमान्त आदि प्राणियों के शत्रु हैं।

१०५ यश, वीर्य, आयु, ऐश्वर्य–इन सब का नाश कुसुमान्त की सेवा से हो जाता है अथवा राजा की सेवा यश, वीर्य, आयु और ऐश्वर्य हरने वाली है।

१०६ काम, क्रोध, मद, मात्सर्य, पैशुन्यादि को न करे।

१०७ शिष्टाचारी शत्रु, मित्र है।

१०८ मित्रों में शिष्टाचार शत्रु है।

१०९ चन्द्र और सूर्य में एक रुचि होनेसे [प्रकाश से] शत्रुता है।

११० यदि ऐसा हो तो उनकी स्थिति नहीं है। आशय यह मालूम होता है कि चन्द्र सूर्य में शत्रुता होती तो उनका रहना असम्भव था।

१११ जहां जातियों में वैर है वहां दोनों कुल जड़से नष्ट होजाते हैं।

११२ जो दण्डनीति शास्त्र को छोड़ देता है वह अज्ञान से विवश कीड़े की भाँति अग्नि में प्रवेश करता है। यह देवताओं के स्वामी [इन्द्र] के गुरु भगवान आचार्य [बृहस्पति] ने कहा है।

बार्हस्पत्य सूत्रों का पहला अध्याय समाप्त।

दूसरा अध्याय.

१ गुणवान् का राज्य है अर्थात् जिस में गुण हैं उसी का राज्य है—गुण हीन पुरुष का नहीं।

२ तीन गुण हैं—विद्यागुण, अर्थ गुण और सहाय गुण।

३ अपने कुल को प्रसन्न रखना और चारित्र (मर्यादादि) की रक्षा करना।

४ कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य [राजा इन्हें सीखे]।

५ अर्थ साधन के समय यानि धनोपार्जन के समय लौकायतिक सिद्धान्त का सर्वथा अनुसरण करे।

६ काम साधन में यानि विषय भोगादि में कापालिक सिद्धान्त को माने।

७ धर्मविषय में आर्हत अर्थात् जैन सिद्धान्त का अनुसरण करे

८ लोकायतिक (सिद्धान्त) वास्तव में लाभकारी नहीं है--उसका अनुयायी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

९ कापालिक, आर्हत और बौद्ध भी।

१० इन में स्थित मनुष्य आग और पतङ्ग के समान है।

११ इनके फल कान में जल के समान हैं यानि कुछ नहीं हैं।

१२ जब अविद्या युक्त मनुष्य धार्मिक विषय में पुरुषार्थ करना

चाहता है तब वह लोकायतिक नाम का पाषण्डी है।

१३ जब चण्डाल मदिरामांसादि को मन भर भोग करने की इच्छा रखता है तब वह कापालिक नाम का पाषण्डी है।

१४ जब संध्योपासनादि अग्निहोत्रादि छोड़कर अहिंसाधर्म की इच्छा रखता है तब वह क्षपणक [जैनसाधु] नाम का पाषण्डी है।

१५ जब वेदोक्त कर्म और ज्ञान तथा सबके ईश्वर शिव, विष्णु और श्री [लक्ष्मी] को छोड़कर कहता है कि सब शून्य है तब वह बौद्ध नाम का पाषण्डी है ।

१६ लोकायतिक कहता है कि धर्म वृथा है-केवल अर्थ साधन है और पिण्डादि देना चोरी है।

१७ वह अग्निहोत्र सन्ध्या जप आदि सब कुछ अर्थ प्राप्ति के लिये करता है।

१८ अपने दोष छिपाने और भोग विलास के लिये वेद पढ़ताहै।

१९ अग्निहोत्रादि करता है।

२० मदिरापान और स्त्रियों के साथ भोग करने को करता है।

२१ कापालिक कहते हैं कि विष्णु आदि देवता मदिरा पान करते हैं।

२२ क्षपणक [जैनसाधु] धर्म पर लक्ष्य रखते हुये कहता है कि धर्म मैले वस्त्र और झाड़ू धारण करने से होता है।

२३ शिव आदि हैं--क्षपणक कहता है

२४ दूसरे की निन्दा करने के लिये वेदशास्त्र धर्म आदि को पढ़ता है।

२५ सबों की निन्दा करता है।

२६ महेश्वर विष्णु आदि की भी।

२७ वह पेट भरने के लिये धर्म वघारता है।

२८ जो वाद विवाद के लिये दूसरों की प्रशंसा करता है वह बौद्ध है।

२९ लौकायतिक मरने पर नरक में वास करता है और वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों से विहीन रहता है।

३० यही हाल उस के कुल का है अर्थात् उस का कुल पुत्र पौत्रों के अन्तर ही नाश को प्राप्त हो जाता है।

३१ कापाली को उस के गांव वाले, और बान्धव लोग छोड़ देते हैं। सब लोग उसकी निन्दा करते हैं और वह नरक में जाता है।

३२ उसी समय उसके कुल का नाश हो जाता है।

३३ क्षपणक की निन्दा उसके कुल के और ग्राम के लोग करते हैं और उस के तीन कुलों का नाश हो जाता है।

३४ बौद्ध का जोड़ा हुआ कुल नष्ट हो जाता है पुत्र पौत्रों के समय में वह बुरा नारकी जीव होता है।

३५ इन पाषण्डियों का संग मन से भी न करे।

३६ अच्छे मानी होने पर दूसरों के दोष जानने पर तथा धार्मिक होने पर भी राज्य का पालन नहीं हो सकता है।

३७ ऐश्वर्यमद से मत्त, लोभी और मंत्री पुरुष के संचित धन का नाश हो जाता है।

३८ जो कार्य का निश्चय कर विषयों को भोगता है उसे अर्थ की सिद्धि अच्छी होती है।

३९ ऐसे चले कि, चेष्टा से लोग यह न जान सकें कि यह कार्य·

ज्ञानी, अर्थतत्पर अथवा धर्मवान् है।

४० ईश्वर अथवा चन्द्र सूर्य के समान।

४१ स्वामी की इच्छा के अनुसार चलने वालों की एक सम्मति होने का नाम मंत्र है।

४२ मन्त्री को चाहिये कि वह स्वामी के मन पसन्द बात की परवाह न कर कार्य को करे।

४३ नीति का फल है धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि।

४४ धर्म द्वारा अर्थ और काम की परीक्षा करे।

४५ धर्म से धर्म की परीक्षा करे।

४६ अर्थ से अर्थ की।

४७ काम से काम की।

४८ मोक्ष से मोक्ष की।

४९ बड़ों की आज्ञा यदि धर्म विरुद्ध हो तो भी उस का पालन करे जैसे (नीचे के उदाहरणों में बताया है), पांडवों का विवाह, अर्जुन का सन्यास, व्यास का विधवागमन, कर्ण का उत्पादन, परशुराम का मातृवध आदि आदि।

५० नीति विरुद्ध पुत्र भी शत्रु है।

५१ बालक, दुष्ट, साहसिक [जल्दबाज] शास्त्रविहीन,—इन्हें मन्त्रणा में सम्मिलित न करे।

५२ मूढ, दुराचारी, तीक्ष्णस्वभाववाला, अपने को ही सब कुछ समझने वाला, जल्दी गुस्से होने वाला, बालक--ये सब मंत्रणा (विमर्श) के योग्य नहीं हैं, अर्थात् इन से सलाह मश्विरा न करे।

५२ अपने कार्य, प्राण और यश की रक्षा के लिये सब रत्नों

को भी दे डाले । रत्नों से अभिप्राय है सभी प्रकार के कोश--स्त्री, मंत्री, सेनापति आदि आदि ।

५४ मंत्र समय क्रोध न दिलावे ।

५५ धर्म प्रधान है--पुरुषार्थ नहीं ।

५६ अधर्म से भोगा हुआ सुख शत्रु समान है--मित्र नहीं है ।

५७ स्थिति से ही वृद्धि है अर्थात् चलायमान होने से वृद्धि नहीं होती है ।

५७ सत्यपर चलने वाला और शास्त्रों में श्रद्धा रखने वाला पुरुष समुद्र को भी सुखा सकता है जैसे अपथ्य भोजन करने वाला [मनुष्य] मृत्यु का मित्र अर्थात् प्रीतिकरने वाला बन जाता है ।

५६ यदि [स्वामी] क्रोधी है तो उसके नौकर-चाकर हताश और डरपोक होजाते हैं ।

६० दुष्ट मनुष्य एक ही, बहुतों का नाश कर करदेता है ।

६१ भाग्य, पुरुषार्थ के आधीन है ।

६२ अपनी स्त्री में रति और आत्मदमन करने वाले के समान कोई नहीं है ।

६३ अच्छे आदमी डर से अपना कर्तव्य नहीं छोडते हैं ।

६४ जो मित्र वार्तालाप के नियमों से अपरिचित हैं उन्हें यह न कह उठना चाहिये, कि इस समय क्या उचित है । भावार्थ यह है कि जो शिष्टाचार के नियमों को नहीं जानता है उसे वार्तालाप के समय उचित अनुचित बताना अनावश्यक है ।

६५ ऐसे मनुष्य का शासन करना जो घमण्डी है, जिसकी

धार्मिक विषय में बात बिगड़गई है और जो अपने को वश में नहीं कर सकता है, दुःसाध्य है।

६६ दारुण कार्यों से थके हुये और अज्ञान निद्रा में सोये हुए मूर्ख को धर्म वाक्यों की शीतल समीर द्वारा जगावे।

६७ दुर्जनों के बीच में सज्जन सूर्य के समान प्रकाशित होता है

६८ अधर्म में लगे मनुष्यों को न्यायरीति से रोके।

६९ अधर्म न कमावे।

७० बदनामी न उठावे।

७१ न [किसीका] बध करे।

७२ मूर्ख का निवारण, हाथी के सदृश, धर्म की बातों के अङ्कुश से करे।

७३ नय संगत गुरु वाक्य का उल्लङ्घन न करे।

७४ नीति विरुद्ध गुरु की ओर ध्यान न दे।

७५ गुरु ने यह कहा है।

बार्हस्पत्य सूत्रों का दूसरा अध्याय समाप्त।

तीसरा अध्याय।

१ पुरुषार्थ उसी का है जिसने क्लेशों (कष्टों) को जीत लिया है।

२ दूसरे देशों में वास करने से मनुष्य क्लेशों पर विजय प्राप्त कर लेता है।

३ देश, काल, बल, साम, प्रकृति, सहायक बल, व्यवसाय और वयस -इन सब का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

४ और उपवास आदि करने की सहनशक्ति [प्राप्त करनी चाहिये]

५ कोशों [खजानों] को सुगंधियों और वस्त्रों से सज्जित करे।

६ मीठी बात चीत देर तक करे।

७ अपने समान बुद्धि वाले सभी मनुष्य रत्नों का हमेशा सत्सङ्ग करे।

८ नये मंत्रों को जाने अर्थात् प्रस्तुत विषय में जो जो नयी सम्मतियां हों उन्हें जाने।

९ वैष्णव शैव और शाक्त–तीन प्रकार [के मत हैं]–इनकी भिन्न भिन्न शाखाएं भी हैं।

१० मोक्षपुरी के तीन द्वार हैं अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने के ये तीन साधन हैं।

११ वैष्णव, शैव और शाक्त।

१२ नौका में यात्रा करने के समान शाक्त है।

१३ प्रधान मार्ग [राजमार्ग] के समान वैष्णव है।

१४ घोड़े के रथ में यात्रा करने के समान केवल प्रधान में विश्वास करने वाला अर्थात् शैव है।

१५ लौकायतिक, क्षपणक, बौद्ध आदि सूने जंगल में गुफा मार्ग के समान हैं, जो अनेक शार्दूल और भयंकर जानवरों से भरा हो।

१६ इन्हें भली भाँति देख कर एक का आश्रय ले।

१७ ज्योतिर्नाथ [चन्द्रमा] के रूप को सदा देखे। चन्द्रमा घटता बढता रहता है -स्थिर रूप नहीं है--इस बात का ध्यान रखे।

१८ और चारो वर्णों की रक्षा करे।

१९ और औषधों का सेवन करे। इनके गुण आगे के सूत्र में कहे हैं।

२० जो बल, वर्ण, तेज, मद, बुद्धि, शौर्य, और दया–[इन

सब गुणों] की वृद्धि करती है और दोषों को हटाती हैं।

२१ दान, मान, अलंकार और विद्या के द्वारा सफलता प्राप्त करे।

२२ अठारह तीर्थों का निरूपण करे।

२३ छःओं प्रकृतियां तीर्थ हैं; शत्रु, मित्र, उदासीन भी अर्थात् जो न शत्रु है न मित्र है [राजा, मंत्री, देश, दुर्ग, सेना और मित्र--इन्हें प्रकृति कहते हैं]।

२४ और भीतरी शत्रु, भीतरी मित्र और भीतरी उदासीन भी सेवक, सखा, और सुहृद् भी।

२५ भार्या, पुत्र और बान्धव।

२६-२७ औरों का भी निरूपण करे अर्थात् इनका देवालय नृत्त-स्थान, यज्ञ, सन्ध्यावापी [सन्ध्या करने के स्थान], चौराये, पाषण्डियों के स्थान, दुकान, बालकों की पाठशालायें, परेडभूमि, खेत, नव चन्द्रमा के दर्शन आदि, उत्सव, वेश्या गृह, समुद्रतीर, संन्यासियों का संग, राज्यसभाएं, मदिरा बेचने के स्थान और पथिकों के निवासस्थान [धर्मशालाएं]।

२८ शृङ्गार वेष करे यानि अच्छे अच्छे आभूषण पहने।

२९ पुर के द्वार पर सर्व साधारण [मनुष्यों] की रोक टोक करनी चाहिये।

३० सब का ही नहीं।

३१ इतिहास पुराणों को माने।

३२ और उनके अभिप्राय बताने वाले ग्रन्थों को भी।

३३ और शाक्त शास्त्रों को।

३४ और वैखानस शास्त्रों को।

३५ और सांख्यों को।

३६ और शैवों को।

३७ सबों का स्वाध्याय करे अर्थात् सबों को भली भांति पढ़े और काम में लावे।

३८ ब्राह्मण में दोष भी हो तो भी न मारे।

३९ निर्दयी पर दया करनी चाहिये। दूसरा अर्थ यह भी है कि दया न करनी चाहिये।

४० गांव के मुखियों का सम्मान करे।

४१ और नगर के प्रबन्धकर्त्ताओं का यानि उच्च राज्य कर्मचारियों का जो नगर के प्रबन्ध के लिये नियुक्त हों।

४२ दुर्बल के साथ साम का प्रयोग करे यानि उस के साथ समझौता कर ले।

४३ बहुत दान से।

४४ थोड़े से नहीं।

४५ उत्तम मनुष्यों के साथ उनके गुण की अधिकतानुसार नहीं।

४६ पाशों से खेले।

४७ या बिलकुल खेले ही नहीं।

४८ सर्पादि का बध करे।

४९ विविध प्रकार के मत्रं सिद्ध किये हुये और विद्या-विशारद श्रेष्ठ ब्राह्मणों का सन्मान करे।

५० दूसरे राज्यों के ब्राह्मणों क्षत्रिय बन्धुओं, राजकुमारों, पड़ोसी राजाओं आदि का अपने समान भोजन वस्त्रादि

से सम्मान करे।

५१ जो अपनी शरण में आया है उस में अनेक दोष भी हों तब भी उसकी रक्षा करे।

५२ दुष्टों का शासन करे यानि उन्हें दुष्टकर्म करने से रोके।

५३ शिष्ट पुरुषों का पालन करे।

५४ गांव को न सतावे।

५५ और न नगर को।

५६ और न मन्दिरों को।

५७ आसवों का सेवन करे।

५८ अधिक नहीं।

५९ और मांस भोजन न करे।

६० जीवहिंसा से घृणा करनी चाहिये।

६१ बौद्धादि जैसे नहीं अर्थात् जिस प्रकार बौद्ध और जैन जीव हिंसा से घृणा करते वैसे नहीं क्यों कि वे तो यज्ञादि में भी हिंसा को बुरा कहते हैं।

६२ ऐसे छोटे अदृश्य जीव नहीं जो ग्रहण करने योग्य नहीं हैं। अभिप्राय यह है कि जैन अदृश्य क्षुद्र जीवों की हिंसा भी रोकते हैं वैसी रुकावट न रखे।

६३ तड़क भड़क वाली स्त्रियों का संग करे।

६४ पृथिवी पचास करोड़ योजन है।

६५ उस में सात द्वीप हैं।

६६ सात समुद्रों से घिरी है।

६७ कर्म, भोग, अतिभोग, दिव्य शृङ्गार, सिद्ध और कैवल्य ये द्वीपों के नाम हैं।

६८ बीच में कर्मभूमि है।

६९ उसके बीच में जम्बू वृक्ष तक मेरु की (भूमि) है।

७० वहां उत्तर को हिमवत् (पर्वत) है।

७१ उसके दक्षिण में नौ हजार (योजन) वाली भूमि है।

७२ उसके दक्षिण की ओर भारतखण्ड है।

७३ वहां धर्म अधर्म के साक्षात् फल मिलते हैं।

७४ वहां दण्डनीति है।

७५ इसे (दण्डनीति को) भूत, भविष्यत् और वर्तमान (काल) के भारतवासियों और चारों वर्णों को पढ़ना चाहिये।

७६ दण्डनीति के अनुसार भगवान् सूर्य (देव) राजा हैं।

७७ और वायु और सब देवता।

७८ और जन्तु अर्थात् सब प्राणीगण।

७९ बदरिका (बद्रिकाश्रम) से सेतु (बन्ध) तक एक हजार योजन (भूमि) है।

८० द्वारका से पुरुषोत्तम और सालग्राम तक सात सौ योजन है।

८१ इसमें सात बड़े पर्वत हैं—रैवतक, विन्ध्य, सह्य, कुमार, मलय श्री-पर्वत और पारियात्र।

८२ गङ्गा, सरस्वती, कालिन्दी, गोदावरी, कावेरी, ताम्रपर्णी और घृत [कृत] माला—सात बड़ी नदियां हैं।

८३ अठारह विषय अर्थात् देश खण्ड हैं।

८४ अठारह समुद्रों के राजा हैं।

८५ अठारह पर्वतों के राजा हैं।

८६ रामकी सृष्टि दक्षिण उत्तर में एकसौ चालीस योजन है; सह्य [पर्वत] तक बारह [योजन] है और विश्वा-मित्र की सृष्टि ग्यारह [योजन] है।

८७ नैपाल एकसौ चार [योजन] है।

८८ पूर्व के समुद्र के तीर पर वरुण से समुद्र तक आठ योजन हैं।

८९ उत्तर लाट और पूर्व लाट, दोनों एक सौ पांच [योजन] हैं।

९० काशी और पाञ्चाल--दोनों अस्सी [योजन] हैं।

९१ केकय और सृञ्जय साठ हैं।

९२ मात्स्य और मागध सौ हैं।

९३ मालव और शकुन्त अस्सी हैं।

९४ कोशल और अवन्ति साठ हैं

९५ सह्य और वैदर्भ -दोनों दो सौ योजन हैं।

९६ वैदेह और कौरव सौ हैं।

९७ काम्बोज और दशार्ण अस्सी हैं।

९८ ये बड़े देशखण्ड हैं।

९९ ये चौकोर हैं।

१०० आरट्ट और वाह्लीक दक्षिण से उत्तर को सौ (योजन) हैं, पर पूर्व से पश्चिम को बारह हैं।

१०१ शाक और सौराष्ट्र चौकोर हैं और चालीस (योजन) के हैं।

१०२ अङ्ग, वङ्ग, और कालिङ्ग सौ [योजन] के हैं और चौकोर हैं।

१०३ काश्मीर, हूण और अम्बष्ठ और सिन्धु सौ (योजन) के हैं। और चौकोर हैं।

१०४ किरात, सौवीर, चौल, पाण्ड्य, उत्तर और दक्षिण में हैं। और सौ के परे साठ (योजन) के हैं।

१०५ यादव और काञ्ची देश-खण्ड एक सौ चालीस (योजन) क हैं।

१०६ ये उपविषय अर्थात् छोटे देश-खण्ड हैं।

१०७ सातों कोङ्कण एकसौ चार (योजन) के हैं ।

१०८ ये जल ऊपर हैं ।

१०९ सह्य पर्वत पर चार पहाड़ी देश हैं ।

११० श्री पर्वत पर दो हैं ।

१११ रैवतक पर एक हैं ।

११२ विन्ध्य पर्वत पर पांच हैं ।

११३ कुमार पर एक है ।

११४ महेन्द्र (पर्वत) पर तीन हैं ।

११५ पारियात्र (पर्वत) पर तीन हैं ।

११६ सब दक्षिण से उत्तर को पचास और पूर्व से पश्चिम को पांच योजन के बराबर हैं ।

११७ म्लेच्छ (भूमि) में यवनों के पहाड़ी देश हैं ।

११८ देश, ग्राम, नगर, बाग बगीचे आदि और पुण्यक्षेत्रादि से सुशोभित हैं ।

११९ आठ वैष्णव क्षेत्र हैं ।

१२० बदरिका, सालग्राम, पुरुषोत्तम, द्वारका, बिलवाचल, अनन्त, सिंह और श्रीरङ्ग ।

१२१ आठ शैव हैं—

१२२ अविमुक्त (काशी), गङ्गाद्वार, शिवक्षेत्र, रामेयमुना, शिवसरस्वती, मन्य, शार्दूल और गजक्षेत्र ।

१२३ शाक्त क्षेत्र भी आठ हैं ।

१२४ ओघ्घीण (उज्जैन), जाल, पूर्ण, काम, कोल्ल, श्रीशैल, काञ्ची और महेन्द्र ।

१२५ ये महाक्षेत्र हैं ।

१२६ सब सिद्धियों के करने वाले हैं।

१२७ और वन्दना करने योग्य हैं।

१२८ विन्ध्य पर्वत पर दुर्गा सदैव वास करती है और भद्र-काली भी।

१२९ कुमार (पर्वत) पर सदा कुमार रहते हैं।

१३० सह्य [पर्वत] पर गणपति रहते हैं।

१३१ रैवतक [पर्वत] पर गुरु अर्थात् बृहस्पति रहते हैं।

१३२ महेन्द्र [पर्वत] पर गरुड़ रहते हैं।

१३३ पारियात्र [पर्वत] पर क्षेत्रपाल यानि शिव रहते हैं।

१३४ कर्मभूमि भारत में मनुष्यों से अधिक संख्या में देवता रहते हैं।

१३५ सुर, असुर, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, विनायक, कूश्माण्ड और टेढे मुँह के प्राणी।

१३६ वे चाहें जितना भार ले जांय और चाहे जैसा वेष बना-लें-इस विषय में कोई रुकावट नहीं है।

१३७ योगिनियां, और नाग-शान्त या भयानक विविध रूप रखते हुये मनुष्यों के साथ अपरिमित संख्या में रहते हैं।

१३८ और मनुष्य उनकी रक्षा करते हैं।

१३९ उस में [भारत में] अमृतमयी औषधियां हैं।

१४० यहां युगों की संख्या है-कृत, त्रेता, द्वापर और तिष्य, यानि सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग।

१४१ कृत (सत्य) युग में ज्ञानी होते हैं।

१४२ दण्डनीति के जानने वाले

१४३ त्रेतायुग में कर्म करने वाले और नीतिज्ञ लोग होते हैं।

१४४ द्वापर में तंत्रशास्त्र के अनुसार चलने वाले और रसघन होते हैं ।

१४५ और नीति जानने वाले ।

१४६ तिष्य (कलियुग) के पहले चरण में ज्ञान और कर्म में दृढ और नीति के जानने वाले मनुष्य होते हैं ।

१४७ उसके पीछे विरुद्ध अर्थात् विविध धर्म, कर्म, वेष वाले और दण्डनीति शून्य मनुष्य होते हैं ।

१४८ प्रजा झूठे वाद विवाद में तत्पर दिखाई देती है । यही आचार्य ने कहा है ।

बार्हस्पत्य सूत्रों का तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय

१ ब्राह्म मुहूर्त में उठना चाहिये यानि सूर्योदय से चार घड़ी पहले ।

२ धर्म और अर्थ का चिन्तन करे ।

३ मुर्गों का शब्द शुभ है ।

४ और हाथी आदि का देखना ।

५ और हाथी का बोलना, मंगलस्तुति और वेदध्वनि ।

६ और देवताओं की पवित्र कथा ।

७ और राज घराने के उच्च महानुभावों का स्मरण ।

८ और नेत्रों का अञ्जन ।

९ और दर्पण देखना ।

१० अलङ्कार आभूषण पहने ।

११ और पान चाबना ।

१२ और कपूर चन्दन अगर धूप।

१३ शंख, काहल (धोंसा), सींग (सींग का बाजा) छेददार नरसल, वीणा, तंत्री [तांत के तारों का बाजा जैसे सरङ्गी आदि मृदङ्ग और ढोल इनकी आवाजें।

१४ और तुरई की घोषणा।

१५ और दिव्य नारियों के दर्शन।

१६ गवइये का टूटा हुआ षड्ज-स्वर यानि पहले स्वर का शब्द।

१७ और जाति-स्वर अथवा हालके जन्मेहुये बच्चे का रोना।

१८ मठ्ठे में पड़ेहुये सफेद फूल।

१९ मंत्रों द्वारा तृप्त की हुई अग्नि में सौ शिखाएं हो जाती हैं। और उस के धूएं में विष्णु का चिन्ह होता है।

२० बैलों का देखना अशुभ है।

२१ और गृध्र का देखना।

२२ और सन्ध्या समय की जलतीहुई अग्नि।

२३ और लड़ते हुये गीदड़ों का रोना।

२४ अथवा हिंसक पशुओं का शब्द जो गाँव या नगर के द्वार पर सुनाई दे।

२५ जब देवताओं की प्रतिमाओं में पसीना निकलते दिखाईदे तो उसका प्रायश्चित्त वहां से दूसरे स्थान पर चला जाना ही है इसका और कोई प्रतिकार नहीं है।

२६ इन कर्मों का निरूपण अवश्य करे।

२७ विजय की जड़ मन्त्र है यानि भली भाँति विमर्श करने से ही विजय प्राप्ति होती है।

२८ मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं—उत्तम, अधम और मध्यम।

२९ यही बात मंत्रणा विषय में है—यानि मंत्र (विमर्श) तीन प्रकार का होताहै -उत्तम, अधम और मध्यम।

३० जो कार्य बन्धु, बान्धव, मित्र, पंडित और धीर पुरुषों के साथ में किया जाता है वह उत्तम है।

३१ धर्म विषय में द्विविधा हो तो गुरु में श्रद्धा करे। आशय यह मालुम होता है कि जब इस बात की द्विविधा है कि धर्म क्या है तब गुरु वाक्य में भरोसा करे। गुरु कहे वही माने।

३२ अर्थ साधन में तत्पर पुरुषों के साथ विचारकर जो काम किया जाय वह उत्तम है।

३३ अच्छा बुरा परिणाम निश्चय करने पर भी अधिक मूर्खता-वश जो काम किया जाय वह अधम है।

३४ जो मत्र (विमर्श) धीर मंत्रियों द्वारा एक मत होकर दण्ड नीति की कसौटी पर जांच कर लिया गया है वह उत्तम है।

३५ जिस मंत्रणा में पहले बहुमत हो और फिर एक मत हो जाय वह मध्यम है।

३६ जिसमें (मंत्रणा में) झगड़ा तथा धमकी हो, एक तो धर्म की कहे, दूसरा अर्थ की कहे, एक रोवे, दूसरा क्रोध करे, अथवा जो स्त्री बालक या वृद्ध के साथ किया जाय वह अधम है।

३७ कार्य का निवेदन पहले स्वामी की ओर से होना चाहिये।

३८ फिर स्वामी का अभिवन्दन उत्तरोत्तर अधिक सम्मान सूचक (क्रियाओं से जैसे) मन, वचन, कर्म, अञ्जलि तथा दण्डवत् प्रणाम द्वारा करे।

३९ जिसका अन्न खाने में वृद्ध वैश्रवण (राजा) अथवा वाचस्पति (ब्राह्मण) निषेध न करे उसकी वन्दना करे।

४० फिर यथाक्रम एक एक का मत सुने।

४१ स्वामी को प्रसन्न कर कार्य पर विचार करे।

४२ पहले स्वामी के गुण (प्रबल विषय) की सराहना करे, फिर स्वामी, विपक्षी तथा मध्यस्थ के दोष (निर्बलविषय) पर विचार करे और फिर स्वामी के गुण (प्रबलविषय) का संस्थापन करे —

भावार्थ यह कि स्वामी जो कुछ कहे उसमें जो मजबूत बात हो उसकी पहले तारीफ की जाय। इसके बाद स्वामी, विपक्षी तथा मध्यस्थ की कमजोर बात हो उस पर विचार करे और अन्त में स्वामी की मजबूत बात का समर्थन करे।

४३ फिर प्रस्तुत उपायों का निरूपण करके और स्वामी को प्रसन्न करके कार्य पर विचार करे।

४४ प्रमत्त अपराधी और भाग्यहीन पुरुषों को युद्धसम्बन्धी कार्यों में सफलता नहीं होती है।

४५ इन निम्नलिखित लोगों के प्रति विक्रम युद्ध विषयक कार्य न करना चाहिये—

सावधान मनुष्य, धर्मज्ञ, जितेन्द्रिय पुरुष, बलवान विजयी पुरुषों पर कोप करने वाला मनुष्य अथवा ऐसा मनुष्य जिस पर आक्रमण करना कठिन है ।

४६ 'शास्त्र को जानते हुये भी कार्य को नहीं जानता है' ऐसा वचन न कहे, अर्थात् अपनी विद्या के घमण्ड में अपने को अमोघ न समझे ।

४७ जो कामादि जैसे बलवान् शत्रुओं को जीत लेते हैं वे सब शत्रुओं पर विजय पा सकते हैं ।

४८ उपकार करने में अगुआ न बने ।

४९ उपकार अवश्य करे ।

५० अनिवार्य विपत्ति को पहले ही जान कर उसका प्रतिकार करे ।

५० यही गुरुने कहा है।

बार्हस्पत्यसूत्रों का चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवां अध्याय.

१ चार उपाय हैं ।

२ और तीन ।

३ माया, उपेक्षा और बध ।

४ सूर अर्थात् बलवान मनुष्यों में साम (उपाय का प्रयोग करे)

५ डरे हुये मनुष्यों में साम और भेद [उपायों का प्रयोग करे]

६ लोभी मनुष्यों में साम, दान और भेद [उयायों का प्रयोग करे]।

७ ऐसे मनुष्यों में जिनको वश में करना कठिन है साम, दान, भेद, माया, उपेक्षा और बध [उपायों का प्रयोग करे]

८ पहले साम [उपाय] को काम में लाना चाहिये।

९ मन का अभिप्राय और बाणी का प्रीति पूर्वक कार्य । भावार्थ यह मालूम होता है कि मीठी मीठी और स्नेहपूर्ण बातों से उसके यानि शत्रु के मन का अभिप्राय जानले ।

१० जाति के लोग जाति वालों की विपत्ति में हर्ष मनाते हैं। जातिवालों का स्वभाव होता है कि जब अपने जातिवाले पे विपत्ति आपड़े तो मन ही मन प्रसन्न होते हैं—दिखावे को सहानुभूति भले ही प्रकट करें।

११ मन में क्रूरता रखते हुये जाति के लोग जाति वालों के साथ उपद्रव करते हैं यानि उन्हें हानि पहुंचाते हैं।

१२ जाति भय सब भयों में भयंकर है। जाति का डर सब डरों से अधिक भयंकर है।

१३ गौओं में दूध और ब्राह्मणों में कोप। जैसे गौओं में दूध स्वाभाविक है वैसे ही ब्राह्मणों में कोप करना स्वाभाविक है।

१४ स्त्रियों में चपलता होती है और जाति के लोगों में दूर रहने का स्वभाव होता है। पत्ते के ऊपर बूंद के समान मित्रता (अस्थिर) है। गाढे मित्र छोटी सी बात में शत्रु होजाते हैं।

१५ जो बड़ों की शास्त्रोक्त और हितकारी बात नहीं सुनते हैं उन्हें समझिये कि काल से प्रेरित है। इसलिये उन्हें छोड़ कर कहीं और जा बसे। भावार्थ यह है कि ऐसे मनुष्यों का शीघ्र ही नाश होने वाला है। इस लिये उन्हें छोड़ कर अन्यत्र चला जाय—उनके साथ अपना नाश न होने दे।

१६ लोक विरुद्ध बात न करे।

१७ घर के बान्धवों के प्रति भलाई के सिवा और कुछ न करे। मंत्रणा, विद्याध्ययन, रहस्य और विपत्ति—इनके विषय में उन से न कहे। भावार्थ यह है कि घर के बान्धवों के साथ भलाई के सिवा और कुछ न करे। न उनसे सलाह मशवरा करे, न उनसे अपना रहस्य कहे, न उनसे अपनी

विपत्ति का हाल कहे और न उनसे अपने विद्याध्ययन के विषय में कहे । सम्भव है उन्हें इर्षा द्वेष होवे और वे आप का अहित कर बैठें । मंत्र, विद्या, रहस्य और व्यसन - इनका चर्चा उन से न करे ।

१८ दुष्ट मनुष्य से बच कर बात करे । विद्यासम्पन्न होने पर भी वह घर के सर्प के बराबर है ।

१६ शत्रुपक्ष से आये हुये मनुष्य का भरोसा न करे ।

२० मनुष्यों का ग्रहण उनके गुणों के अनुसार करे । जैसा गुण देखे वैसा आदर करे ।

२१ भावों द्वारा परीक्षा करनी चाहिये । मनुष्य की परीक्षा उस की चेष्टा और उसके मनोविकारों से हो जाती है ।

२२ बलहीन मनुष्य वीर पुरुषों को शीघ्र ही नहीं जान लेते हैं । बुद्धि की परीक्षा किसी अनजान काम में शीघ्र ही करले ।

२३ चेष्टा या इशारों से जाना जाता है । मनुष्य अपनी चेष्टा या अपने भावविकारों से जाना जा सकता है ।

२४ प्रसन्न [मनुष्य] नहीं ।

२५ जिसे भय या शंका नहीं है वह अति शान्तचित्त है ।

२६ और कोप रहित है । उसे बालक आदि भी जान लेते हैं ।

२७ अपने कुल का विनाश जानकर बुद्धिमान् मनुष्य शत्रु के पक्ष का भी नययुक्त आश्रय लेवे ।

२८ हृदय में शुभ और अशुभ के भाव पहले ही उत्पन्न हो जाते हैं । दुष्टाचरण सब जगह न करे ।

२६ चञ्चल मनुष्यों का बहुत आदर नहीं होता है ।

३० बृहस्पति आचार्य ने यही कहा है ।

बार्हस्पत्यसूत्रों का पांचवां अध्याय समाप्त ।

छटा अध्याय.

१ देशकालयोग्य कर्म, और नय और अनय को जाने यानि किस स्थान में अथवा किस समय क्या कर्म करना चाहिये इस बात का ज्ञान प्राप्त करे और इस का ज्ञान भी करे कि ठीक क्या है क्या नहीं है—नीति शास्त्र के अनुसार यह बात ठीक है या नहीं ।

२ वेद, बल, और दर्प के विपरीत [कर्म] को नहीं । अर्थात् जो कर्मशास्त्र, पुरुषार्थ अथवा मान मर्यादा के विरुद्ध हो उसे न सीखे ।

३ हितकारी कार्य करे ।

४ मंत्रियों द्वारा जांच किये नय को करे । अर्थात् जिस नीति की मंत्रियों ने भली भाँति परीक्षा कर ली है । उसी को काम में लावे ।

५ कार्य अकार्य का निरूपण अमात्यों के साथ करे जिनका जीवन ही बुद्धिबल पर अवलम्बित है । अमात्य या मंत्री अकल की रोटी खाते हैं--इनकी कुशाग्र बुद्धि होती है । इनके साथ कार्य अकार्य का विचार करे । ऐसा करने से यह निश्चय हो जाता है कि यह कार्य करने योग्य है या न करने योग्य है ।

६ मंत्रणा करने योग्य वही पुरुष है जो अपनी रुचि के विपरीत कार्य को भी भली भांति करता है ।

७ अर्थ का संचय करे । अर्थात् धन का उपार्जन करे ।

८ जिस के पास अर्थराशि है अर्थात् धन का ढेर है यानि उसके पास सभी कुछ है ।

९ जैसे हाथी के विना हाथी नहीं पकड़ा जा सकता है वैसे ही धन के विना धन का उपार्जन नहीं हो सकता है।

१० जगत की जड़ धन है, अर्थात् संसार के सब काम धन से ही चलते हैं। यदि धन न हो तो कोई भी कार्य नहीं हो सकता है। राज्य के लिये तो धन मूल तत्व है।

११ उसी में [धन में] सब चीजें हैं।

१२ धन हीन मनुष्य चाण्डाल और मुर्दे के समान है।

१३ और विद्याका उपार्जन करे, जो धर्म की जड़ है।

१४ विद्या ही जगत् की जड़ है।

१५ फिर विद्या सभी कुछ है। यही गुरु ने कहा है।

बार्हस्पत्य सूत्रों का छटा अध्याय समाप्त।

इति

बार्हस्पत्यसूत्रों
पर
टिप्पणी

पहला अध्याय।

१ कौटिल्य अर्थ शास्त्र के तीसरे प्रकरण में लिखा है कि राजा को इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना चाहिये। काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष को त्याग कर इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की जाय। शास्त्र विहित नियमों के अनुसार चलना अथवा पाचों इन्द्रियों नाक, कान, आंखें, जिह्वा, त्वच् का अपने अपने विषयों की ओर न झुकने देने का नाम ही इन्द्रियजय है। सारे संसार का राजा कोई क्यों न हो यदि वह इसके विरुद्ध आचरण करता है और इन्द्रियों के वश में है तो वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

चाणक्य सूत्रों के चौथे सूत्र में राज्य का मूल इन्द्रियजय बताया है।

२ कौटिल्य अर्थ शास्त्र के चौथे प्रकरण में मंत्री के ये लक्षण बताये हैं–जो लोग कुलीन, बुद्धिमान्, विश्वास-पात्र, वीर तथा राजभक्त हों उन्हें अमात्यपद पर नियुक्त करे क्योंकि उन में गुणों की प्रधानता होती है। आगेचल ५वें प्रकरण में कहा है–अमात्य के लिये आवश्यक है कि वह स्वदेशोत्पन्न कुलीन, समृद्ध, शिक्षित, दूरदर्शी, विवेकपूर्ण स्मृतिवान्, चतुर, वाक्पटु, गम्भीर, प्रगल्भ, समझदार, उत्साही,

प्रभावशाली, सहिष्णु, पवित्र, मित्रके योग्य, दृढभक्ति, सुशील, समर्थ, स्वस्थ, गौरवयुक्त, अप्रमादी, अचपल, सर्वप्रिय तथा किसी को भी अपना शत्रु बनाने वाला न हो।

चाणक्य सूत्रों में २१ वां सूत्र है—राज्यभक्त बुद्धिमान् व्यक्ति को मंत्री बनावे।

३ राजा की विद्या के विषय में कौटिल्य अर्थशास्त्र के पहले प्रकरण में यह लिखा है:—

दर्शन-शास्त्र [आन्वीक्षकी], तीनों वेद [त्रयी] सम्पतिशास्त्र वार्ता तथा राजनीति-शास्त्र दण्डनीति ये चार विद्या हैं। इस विषय में नीति के आचार्यों के भिन्न भिन्न मत हैं जिन में से कुछ ये हैं:—

मनु—तीनों वेद, संपत्ति-शास्त्र और दण्डनीति राजा की विद्याएं हैं।

बृहस्पति—संपत्तिशास्त्र और दण्डनीति—मुख्यतः दण्डनीति।

शुक्राचार्य—दण्डनीति।

कौटिल्य—दर्शनशास्त्र, तीनों वेद, सम्पत्तिशास्त्र और दण्डनीति। इनका कथन है कि सांख्य, योग और लोकायतिक [नास्तिक दर्शन] दर्शन शास्त्र के ही अन्तर्गत है। तीनों वेदों से धर्म—अधर्म का, सम्पति-शास्त्र से अर्थ—अनर्थ का तथा राजनीति-शास्त्र से शासन—कुशासन का ज्ञान प्राप्त होता है।

चाणक्य सूत्रों के १४ वें सूत्र में लिखा है कि विद्या और विनय के विना राजा नराजा होने के बराबर है।

८, ९, १०—कौटिल्य अर्थ शास्त्र के १४ वें अधिकरण का नाम

औपनिषदिक है इस में ४ प्रकरण हैं—पहले का विषय है पर घात प्रयोग, दूसरे का अद्भुतोत्पादन, तीसरे का मंत्र प्रयोग और चौथे का शत्रुघातक योगों से स्वपक्ष का रक्षण। १७ वें प्रकरण में अग्नि, विष तथा सांप से बचने का उपाय वर्णित है। इन सूत्रों का भली भांति अभिप्राय समझने के लिये कौटिल्य अर्थशास्त्र के ऊपरोक्त प्रकरण पठो।

३७ मनुस्मृति में भी ऐसी आज्ञा है।

४० शुक्रनीति के तीसरे अध्याय के २३० श्लोक में भी यही कहा है।

५० तीन जन्मदिन अपने, या एक अपना, एक अपने पिता का और एक प्रपिता का—इस प्रकार तीन जन्मदिनों का विचार करे।

५६–६६ एक घड़ी आधे मुहुर्त या २४ मिन्टों की बराबर है—ढाई घड़ी का एक घंटा होता है।

राजा की दिनचर्या का वर्णन कौटिल्य अर्थशास्त्र के १६ वें प्रकारण में दियाहुआ है—उसका सारांश यह है।

राजा रात-दिन को आठ भागों में विभक्त कर दिन के आठ भागों का कार्य।

१ दिन के पहले भाग में राष्ट्ररक्षा का प्रबंध तथा आयव्यय विषयक बातें सुने।

२ दूसरे भाग में नागरिकों तथा ग्रामीणों के कार्य का निरीक्षण करे।

३ तीसरे भाग में स्नान, भोजन, और स्वाध्याय करे।

४ चौथे भाग में उपहारादि ले और अध्यक्षों की नियुक्ति करे।

५ पांचवें भाग में मंत्री-मडली बुलावे और खुफिया लोगों से गुप्त बातें सुने।

६ छठे भाग में स्वच्छन्द विहार करे या सलाह मश्वरा करे।

७ सातवें भाग में हाथी घोड़े रथ तथा पदातियों की देख रेख करे।

८ आठवें भाग में सेनापति के साथ सैनिक कार्य तथा आक्रमण संबधी विचार करे। दिन के समाप्त होने पर संध्या करे।

रात्रि के आठ भागों का कार्य :—

[१] रातके पहले भाग में खुफिया पुलिस के लोगों से बात-चीत करे।

[२] दूसरे भाग में स्नान, भोजन तथा स्वाध्याय करे।

[३] तीसरे भाग में तुरी की आवाज के साथ ही सोने के लिये कमरे में जाय।

[४] [५] चौथे और पांचवें भागों में सोवे।

[६] छटे भागमें तुरी की आवाज के साथही उठे शास्त्र का विचार करे और आवश्यक कामों के करने का विचार करे।

[७] सातवें भाग में सलाह मश्वरा करे और खुफिया लोगों को इधर उधर भेजे।

[८] आठवें भाग में ऋत्विग् आचार्य तथा पुरोहित लोगों के साथ स्वस्त्ययन अर्थात् वेद मंत्र पाठ करे। वैद्य, पाचक तथा ज्योतिषियों के साथ बात चीत करे। बछड़े सहित गौ बैल की प्रदक्षिणा कर राज सभा में जावे।

अथवा अपने सामर्थ्य के अनुसार रात दिन का विभाग कर काम करे।

६८--कुसुमान्त शब्द १०४, और १०५, सूत्रों में भी आया हैं। इसका अर्थ क्या है इसका पता नहीं लगता है।

दूसरा अध्याय.

४ कौटिल्य अर्थशास्त्र के पहले प्रकरण में कृषि, पशु पालन [गौरक्षा] तथा वाणिज्य को वार्ता शास्त्र [सम्पति-शास्त्र] का विषय बताया है । इसके द्वार धान्य, पशु, हिरण्य, जांगलिक द्रव्य तथा स्वतंत्र श्रम के मिलने से यह बहुत ही उपकारी विषय है । इसी से कोश दण्ड के द्वारा राजा स्वपक्ष तथा परपक्ष को वश में करता है।

५, ६, ७, परि शिष्ट १ देखो ।

८--३५ ये सूत्र पीछे से मिलाये हुये कहे जाते हैं क्योंकि इनका पहले सूत्रों से ठीक संबन्ध नहीं दिखाई देता है। इन सूत्रों में जैन और बौद्ध धर्म की जो निन्दा की गई है वह सर्वथा अनुचित है।

६ परिशिष्ट १ देखो ।

४० जैसे ईश्वर का अभि प्राय गुप्त रहता है वैसेही राजा के मन की बात भी किसी को मालूम न होनी चाहिये। सूर्य चन्द्र अपना कार्य चुपचाप करते हैं--उसकी घोषणा नहीं देते हैं। ऐसे ही राजा को भी करना चाहिये।

४६ ये सब कथाएं महाभारत में हैं:—

माता कुन्ती के कहने से पांचों पाण्डवों ने द्रोपदी के साथ विवाह किया था।

सत्यवती माता की आज्ञा से व्यासजीने सत्यवती की पुत्र बधुओं के साथ नियोग कर धृतराष्ट्र, पाण्डु आदि को उत्पन्न किया था।

अविवाहिता कुन्ती के कर्ण की उत्पत्ति सूर्य देव की आज्ञा से हुई थी।

परशुराम जी ने पिता की आज्ञा से माता का वध किया था।

५८ प्राचीन काल में विष देकर शत्रु को मार डालना राज्य नीति का अङ्गथा। इसका उल्लेख कौटिल्य अर्थशास्त्र में है। ऐसा मालूम होता है कि इस सूत्र में इसी बात की ओर इशारा है। राजा को चाहिये कि वह अपने लिये खान--पान में सुरक्षित रहे।

तीसरा अध्याय.

३ कौटिल्य अर्थशास्त्र में इन सब बातों का वर्णन है। नीति शास्त्र में प्रकृति का अर्थ है—राजा, मंत्री, देश, दुर्ग, सेना और कोश अथवा मित्र। सहायक बल से अभिप्राय मित्रसेना से है।

९ सूत्र ९—१६ और ३३ साम्प्रदायिक हैं और पीछे से मिलाये हुये कहे जाते हैं। दूसरे अध्याय में ८—३५ सूत्र भी इसी प्रकार के हैं और पीछे से मिलाये हुये कहे जाते है परिशिष्ट १ देखो।

१८ चार वर्ण ये हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में इन चारों की उत्पति ईश्वर के मुख, भुजा, उदर और पैरों से बताई हैं। इस से मालूम होता है कि चारों वर्णों का अस्तित्व वेदकाल से हैं- नवीन नहीं हैं।

२२ तीर्थ शब्द नीति-शास्त्र में राष्ट्र के प्रधान पुरुषों के अर्थ में आया है।

२३ इस सूत्र में १८ तीर्थ कहे हैं उनके नाम ये हैं:—
६ प्रकृति (१ राजा, २ मंत्री, ३ देश, ४ दुर्ग, ५ सेना और कोश), ७ शत्रु ८ मित्र ९ उदासीन १० भीतरीशत्रु ११ भीतरी मित्र १२ भीतरी उदासीन १३ आश्रय में रहने वाले सेवकादि १४ सखा १५ सुहृद १६ भार्या १७ पुत्र १८बान्धव

३१ परि शिष्ट १ देखो।

३२ इस सूत्र में 'पक' शब्द 'पङ्क्ति' शब्द के अर्थ में मालूम होता है जैसे ज्ञानपङ्क्ति, लोकपाङ्क्ति। यह शब्द शतपथ ब्राह्मण में आया है, देखो ११वें में ५, ७, १। पाङ्क्ति का अर्थ है पक'ना, पकना, विकास आदि। जो ग्रन्थ किसी अन्य ग्रन्थ के सिद्धान्तों को खोल कर समझाये वह 'पाक' कहलाता है।

३३- ३४ ये सूत्र भी पीछे से मिलाये हुये कहे जाते हैं।

३४ वैखानस का अर्थ है वैराग्य से संबन्ध रखने वाला, अथवा सन्यासी, वैरागी, योगी। वैखानस आगम वे शास्त्र हैं जिन में सन्यासियों वानप्रस्थों योगियों आदि के कर्म प्रतिपादित हों।

५७ आसव पीने की वस्तु है। इससे नसा होता है। पहले शराब की जगह इसके पीने की प्रथा थी।

६४--१३६ इन सूत्रों में पृथिवी और भारतवर्ष की भूगोल सम्बन्धी वर्णन है। इसके लिये परिशिष्ट २ देखो।

६४—इन सात द्वीपों के नाम और कहीं नहीं मिलते हैं। भारतवर्ष कर्मभूमि सभी पुराणों में कही है।

७६ वदरिका वद्रकाश्रम -उत्तर सीमा।
सेतु, रामचन्द्र जी का बांधा हुआ सेतु--दक्षिण सीमा।

८० पुरुषोत्तम तीर्थ उडीसा में है और सालग्राम तीर्थ गण्डक नदीपर है। द्वारिका पश्चिम सीमा है और पुरुषोत्तम और सालग्राम पूर्वसीमा।

८१ पुराणों में मुख्य सात पर्वतों के नाम ये हैं:—
महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, ऋक्षवान, विन्ध्य और पारियात्र। इस में चार पर्वतों के नाम यानि मलय, सह्य, विन्ध्य और पारियात्र तो मिलते हैं। किन्तु रैवतक, कुमार और श्री पर्वत नहीं मिलते। ये तीनों नाम बड़े पर्वतों के नहीं हैं छोटे पहाड़ों के हैं। इन तीनों में रैवतक पहाड़ तो गिरिनार पर्वत है जो जूनागढ के समीप है। कुमार और श्री पर्वत अन्य पर्वत हैं।
बाकी चार पर्वतों का संक्षिप्त हाल यह है:—
विन्ध्य पर्वत—यह पर्वत श्रेणी आर्यावर्त के दक्षिण ओर भारतवर्ष के वीच में है।
सह्य—हिन्दुस्थान में प्रधान सात पर्वत श्रेणियों में से एक। इस का इस समय का नाम सह्याद्र है। यह पश्चिमी

घाटों का वह भाग है जो मलय के उत्तर में नीलगिरि से मिल जाता है।

मलय—भारत की प्रधात सात पर्वत श्रेणियों में से एक। पश्चिमी और पूर्वी घाटों का दक्षिणी ओर भाग जो मैशूर के दक्षिण से फैला हुआ है। और ट्रैवनकोर की पूर्वी सीमा बनाता है। भवभूति ने लिखा है कि इस के चारों ओर कावेरी है और इस में इलायची काली मिर्च, चन्दन और पान के वृक्ष बहुत हैं।

पारियात्र—भारत की प्रसिद्ध सात पर्वत श्रेणियों में से एक। सेवालिक पर्वत जो हिमालय के लगातार बराबर फैला है और उत्तर पूर्व की गङ्गा के द्वाव की रक्षा करते हैं।

८२ गङ्गा, सरस्वती, कालन्दी (यमुना) ये नदियां हिमालय पर्वत से निकलती हैं।

गोदावरी—सह्य पर्वत से निकलती है।

कावेरी—पारियात्र पर्वत से निकलती है।

ताम्रपर्णी—मलयाचल से निकल कर मनार की खाड़ी में गिरती है। इसका नाम तामब्रखारी हैं।

घृतमाला—जिसका शुद्ध नाम कृतमाला है मलयाचल से निकलती है।

८३ विषय का अर्थ देश-विभाग या देश-खण्ड।

८६ रामकी सृष्टि—परशुराम ने समस्त पृथिवी क्षत्रिय राजाओं से जीत कर दान में दे दी थी। अपने रहने के लिये मला-

वार के समीप समुद्र से पृथिवी का एक भाग निकाला था और वह वहीं रहते थे यही परशुराम की सृष्टि है। विश्वामित्र की सृष्टि—इस का अन्यत्र उल्लेख नहीं मिलता है पर यह बात पौराणिक कथाओं से सिद्ध है कि इन्हों ने वासिष्ट मुनि के साथ मुकाबला करने को जीव रचना की थी। जितनी टेढी, भद्दी, दूषित, बुरी वस्तुएं हैं उन के स्रष्टा विश्वामित्र कहलाते हैं क्योंकि यह शुद्ध और सुन्दर जीव रचना न कर पाये।

८६—उत्तर और पूर्व लाट नर्मदा के पश्चिम में हैं। इस समय इस देश विभाग में भरोच, बरोदा, अहमदाबाद और खेरा शामिल हैं।

९० पाञ्चाल—गंगा यमुना के बीच का देश। इसी को गंगा का द्वाव कहते हैं। राजा द्रुपद के समय यह देश चंवल नदी से लगा उत्तर में गंगा द्वारतक फैलाहुआ था। इस के दो भाग थे--उत्तर पाञ्चाल और दक्षिण पाञ्चाल।

९१ केकय—सिंधु प्रदेश के किनारे पर का स्थान जहां केकय जाती रहती थी।

९२ धौलपुर से पश्चिम ओर विराट, या मात्स्य देश था। इसकी राजधानी का नाम विराट था जिसे अब बैरात कहते हैं जो जयपुर से ४० मील उत्तर में है।

मागध विहार प्रान्त का नाम है।

९३ मालवा—मालवा।

९४ कोशल–सरयुनदी के किनारे का देश। इसके दो भाग थे उत्तर कोशल और दक्षिण कोशल। उत्तर कोशल का नाम गएड भी है अयोध्या के उत्तर में हैं। इसमें गोंडा और बेराइच शामिल हैं। इसके राजा, अज, दशरथ आदि थे। दक्षिणी कोशल में लव कुशका राज्य रहा है।

अवन्ति–नर्मदा के उत्तर की ओर है। उसकी राजधानी उज्जयिनी थी अथवा अवन्तिपुरी या विशाला। यह क्षिप्रानदी पर है। यह मालवे का पश्चिमी भाग है।

९५ वैदर्भ (विदर्भ)–बरार को कहते हैं। यह नर्मदा और गोदावरी के बीचका जिला है। इसे महाराष्ट्र भी कहते हैं इसकी राजधानी का नाम विदर्भा था जिसे कुंडिनपुर भी कहते थे। इसका इस समय बेदर नाम है। नर्मदा नदी से इसके दो भाग हुये हैं। अमरावती उत्तरी भागकी राजधानी है।

सैह्य–सह्य पर्वत के नाम से जिला था। सह्य-पर्वत का वर्णन ऊपर कर आये हैं।

९६ वैदेह–मगध देश के उत्तर पूर्व की ओर वैदेह देश है इसकी राजधानी मिथिला थी जिसे जनकपुर कहते हैं यह नैपाल देश में मधुवाणी के उत्तर में हैं। प्राचीन काल में विदेह में नैपाल का कुछ भागथा और तिर्हुट के पुराने जिलेका उत्तरी भाग और चम्पारन का उत्तरी पश्चिमी भाग शामिल था।

कौरव–कुरु प्रदेश का नाम है।

९७ काम्बोज–वह प्रदेश जो हिन्दूकुश पहाड़ गिलगित घाटी को बलख से अलग करता है और छोटे तिब्बत यानि

लदक तक फैला हुआ है। यह देश सुन्दर घोड़ों और शाल-दुशालों के लिये प्रसिद्ध था। ये बकरी, चूहे, और कुत्तों के ऊन से बनाये जाते थे। इस देश में अख-रोट के बहुत वृक्ष थे। यहां के रहने वाले कम्बोज कह-लाते थे।

दशार्ण–जिसमें दशार्ण नदी बहती है। यह मालवा का पूर्वी भाग था। इसकी राजधानी विदिशा थी जिसे अब भिलासा कहते हैं।

१०० बाल्हीक–का नाम बलख है और अंग्रेजी में इसे Bactria कहते हैं।

आरट्ट–प्रदेश भी इस तरफ का था इसका अधिक वर्णन नहीं मिलता।

१०१ शाक–उत्तर पश्चिमी सीमा पर देश विभागों का नाम। यहां शक लोग रहते थे जो सीदीयन (scythians) कह लाते थे।

सौराष्ट्र–काठियावाड़ का नाम है। इसका दूसरा नाम आनर्त है। इसकी राजधानी प्राचीन द्वारिका थी जो रैवतक पर्वत के पास और वर्तमान द्वारिका के दक्षिण पूर्व में ६५ मील दूर मधुपुरा के समीप थी। इसकी दूसरी राजधानी का नाम वल्लभी था जिसके शेषांश भाग भावनगर से १० मील पर मिलते हैं। इसी देश में समुद्र के किनारे प्रसिद्ध प्रभास झील थी।

१०२ अङ्ग–भागलपुर के समीप का प्रदेश। इस की राजधानी चम्पा थी।

बङ्ग—इस का नाम समतल भी है–यह पूर्वी बंगाल है।

कलिङ्ग–उत्तरी सरकार को कलिङ्ग कहते हैं। यह उड़ीसा के दक्षिण गोदावरी तक फैला हुआ है।

१०३ काश्मीर–हिन्दुस्थान के उत्तर पश्चिम में है।

हूण—हूण जाति के रहने का देश हूण देश।

अम्बष्ट—इस का पता नहीं लगा।

सिंधु–सिंधु नदी के किनारे का देश।

१०४ किरात—पूर्व में है वर्तमान आसाम के लगभग किरात जाति पहाड़ियों पर रहती थी।

सौवीर–इस का पता नहीं मिला है।

चोल–तञ्जोर। इसे करनाटक भी कहते हैं। यह प्रदेश कावेरी नदी पर मैसूर के दक्षिण में है।

पाण्ड्य–तिन्नावेली। यह चोल के दक्षिण पश्चिम में है। यह हिन्दुस्थान के बिलकुल दक्षिण में है। रामेश्वर द्वीप इसी में है। इस की राजधानी का नाम जागपट्टन है जो मद्रास के १६० मील दक्षिण में है।

१०५ यादव–यादव प्राचीन जाति है इस में श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। इन का पहला निवास स्थान मथुरा था। सम्भवतः यह जाति पीछे देवगिरि पर जारही।

काञ्ची–इसे कारामण्डल का किनारा कहते हैं। यह गोदावरी के दक्षिण में है। इस की राजधानी का नाम काञ्ची था। उसे अब काञ्चीवेरम कहते हैं और वह मद्रास से ४२ मील दक्षिण पश्चिम में वेगवती नदी पर है काञ्ची प्रदेश का दूसरा नाम द्रविड है।

१०७ कोंकण—सह्याद्रि और समुद्र के बीच की पतली लम्बी भूमि।

११४ महेन्द्र—हिन्दुस्थान की प्रसिद्ध सात पर्वत श्रेणियों मे से एक पर्वत श्रेणी जिस के अन्तर्गत पूर्वीघाट महानदी से लगा कर गोदावरी तक है। यह गञ्जम को महानदी की घाटी से अलग करता है इस का नाम महेन्द्र माल है।

११७ म्लेछ—भारत वर्ष की सीमाओं पर म्लेच्छों के देश हैं।

यवन—यवन शब्द यूनानियों के लिये आता है। ये भारत के पश्चिम ओर रहते थे।

११६-१२७ ये सूत्र पीछे से मिलाये हुये कहे जाते हैं।

१२० विल्वाचल—विल्वाद्रिका दूसरा नाम मालूम होता है।

सिंह—सिंहाचल का नाम है। इन दोनों के माहात्म्य मिलते हैं।

श्रीरङ्ग—दक्षिण में है श्रीरंग विष्णु का नाम है। श्री रङ्गा पट्टन में विष्णु भगवान का बहुत बड़ा मन्दिर है। अनन्त और सिंह। अनन्त भगवान् शेषनाग हैं और सिंह नृसिंह जी हैं।

१२२ अविमुक्त—काशी का अति प्राचीन नाम है। यहां शिवजी सदैव रहते हैं। इस के माहात्म्य का पुराणों में भली भांति वर्णन है।

१२४ ओध्धीण—उज्जैन है।

१३६ विनायक—गणेश और गरुड़ दोनों का नाम है। कूष्माण्ड, कद्दू जैसे शाकफल का नाम है—ऐसे लोग जो दिखावट में इस फल के समान हों।

१४० युग–सत्ययुग (कृतयुग) द्वापर, त्रेता और कलियुग (तिष्य) चार युग हैं।

सत्ययुग–१७,२८००० वर्ष
त्रेतायुग–१२,९६००० वर्ष
द्वापरयुग–८,६४००० वर्ष
कलियुग–४,३२००० वर्ष
महायुग–४३,२०००० वर्ष

इस समय कलियुग है। सम्वत् १९८० में कलियुग के ५०२४ वर्ष हो गये हैं। बाकी वर्ष ४,२६९७६ हैं

चौथा अध्याय.

३-२५ इन सूत्रों में शुभ और अशुभ शकुनों का वर्णन है इस विषय का पूरा विवरण देखना हो तो मत्स्य पुराण के २४१ २४३ अध्यायों को पढो।

४ यूनानियों ने लिखा है कि हिन्दुस्थान में प्रातः काल हाथी सिर नवाकर राजा को प्रणाम करता है

२५ मूर्तियों से पसीना निकलने का उल्लेख हर्षचरित में भी है।

पांचवां अध्याय.

१--३ इन सूत्रों में सात उपाय बताये हैं यानि साम (समझौता करना), दान, दण्ड, [सजादेना] भेद [फूट डालना, आपस में झगड़ा पैदा कर देना, एक दूसरे को लड़ा देना] माया (छल, कपट,) उपेक्षा (लापरवाही) और बध, किसी किसी ने बध की जगह, इन्द्रजाल को सातवां उपाय बताया है।

छटा अध्याय.

६ मंत्रणा अर्थात् विमर्श करने के योग्य वही है जो अपनी रुचि के विपरीत को भी भलीभाँति करता है। प्रायः मनुष्य ऐसे होते हैं यदि उनकी सम्मति किसी कार्य में होती है तब तो उस को मन लगाकर करते हैं और जब कोई ऐसा कार्य करना पड़े जो उनकी इच्छा या रुचि के विपरीत है तो उसे वे लापरवाही से करते हैं या विगाड़ देते हैं। इस लिये यहां यह कहागया है कि ऐसे मनुष्यों या कर्मचारियों के साथ मंत्रणा करे जिन्हें इस बात की परवा न हो कि उनकी राय मानीगई या न मानी गई ऐसे मनुष्य उस कार्य को भी मन लगा कर करते हैं जो उनकी राय के विरुद्ध होता है। राजा को ऐसे मनुष्यों के साथ ही सलाह मशवरा करना चाहिये। ऐसा मंत्री जो अपनी इच्छा के विरुद्ध कार्य को करने में अपनी बुद्धि लगता है, विश्वासपात्र होता है।

८–१२ इन सूत्रों के संम्बन्ध में भर्तृहरि जी के निम्न लिखित श्लोक देखोः—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥

अर्थ–जिसके पास धन है वही मनुष्य कुलीन, पण्डित, विद्वान्, गुणज्ञ, वक्ता एवं दर्शनीय है। सब गुण धन के आश्रित हैं।

तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेव कर्म
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव।

अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥

अर्थ–सब इन्द्रियां वेही हैं व्यवहार भी सब वही हैं, वही प्रबल बुद्धि भी है वचन भी वैसे ही हैं परन्तु द्रव्य की उष्णता बिना वही पुरुष क्षणमात्र में और का और हो जाता है। यह बात विचित्र है।

१३–१५ इस सम्बन्ध में भी भर्तृहरि जी का श्लोक पढ़ोः–

विद्या नाम नरस्य रूपमाधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्।
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः ॥
विद्या बंधुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम्।
विद्या राजसु पूजिता नहि धनं विद्याविहीनः पशुः ॥

अर्थ–विद्या मनुष्य का बड़ा रूप और गुप्त धन है विद्या ही भोग, यश, सुख करने वाली है, विद्या गुरुओं की गुरु है परदेश में विद्या ही बन्धु जन है। और विद्या ही परम देवता है। राजाओं में विद्या की ही पूजा होती है धन की नहीं, विद्या के विना मनुष्य पशु है।

* ॐ *

परिशिष्ट (१)

धर्म, मत, सम्प्रदायविषयक.

लोकायतिक.

लोकायतिक सिद्धान्त चार्वाक मत को कहते हैं । लोकायतिक का अर्थ है जो लोगों में साधारण प्रकार से माना जा सके इस मत को बृहस्पति नामक ब्राह्मण ने चार्वाक के द्वारा चलाया था। चार्वाक का समय ईसा से २४३६ वर्ष पूर्व का है। इस का जन्म अवन्ति प्रदेश के शङ्खोद्धार नगरी में हुआ था। और इस के माता पिता के नाम स्रग्विणी और इन्दुकान्त थे। चार्वाक मत की मोटी मोटी बातें ये हैं—

सृष्टि का रचयिता कोई नहीं है । पृथ्वी, वायु, तेज और जल—येही चार तत्व हैं--इन्हीं से सारी सृष्टि हुई। जब चारों का अनेक प्रकार से योग होता है, तब जैसे कत्था, चूना और पान के योग से लाल रंग उत्पन्न होता है वैसे ही जीवादि उत्पन्न होते हैं। जीव की उत्पत्ति इन तत्वों से अलग नहीं है शरीर नष्ट होने पर फिर नहीं प्राप्त हो सकता है--पुनर्जन्म नहीं है। मरने का नाम ही मोक्ष है । जब तक संसार में जीवित रहो तब तक खूब खा पी कर स्त्री भोग विलासादि से आनन्द भोगो । यही स्वर्ग है--दुःख को भोगना नरक है। हमे आजन्म सुख भोग करना चाहिये । वेद धर्मादि कुछ नहीं हैं । श्राद्ध करना निरर्थक है। वर्णाश्रमादि क्रियाओं से कुछ नहीं। चार्वाक घोर जड़वादी हैं।

बृहस्पति के बनाये बार्हस्पत्य सूत्रों में इन के सिद्धान्त वर्णित हैं--इन में पिण्डदान की बड़ी हंसी उडाई है । ये बार्हस्पत्य सूत्र इन सूत्रों से पृथक् हैं क्यों कि वे एक दूसरे बृहस्पति नाम के ब्राह्मण के बनाये हुये हैं। इस मत का कुछ हाल सर्वदर्शनसंग्रह में भी है। कौटिल्य अर्थशास्त्र के पहले प्रकरण में लोकायतिक सांख्य और योग सिद्धान्तों को दर्शन शास्त्र के अन्तर्गत बताया है। लोकायतिक मत का कुछ हाल १६--२० सूत्रों में दिया है।

कापालिक

कापालिक लोग एक प्रकार के शैव हैं। ये मनुष्यों के कपालों की माला रखते हैं और कपाल में ही खाते पीते हैं। ये लोग मांस मदिरा सेवी हैं और रात दिन इसी में लगे रहते हैं। जैसे कापालिक लोग विषयभोग में निमग्न हो जाते हैं वैसे ही काम साधन में मनुष्य को मनभर आनन्द उठाना चाहिये। इनका कुछ हाल आगे के सूत्रों में है—देखो सूत्र १३, २१, ३१, ३८.

जैन धर्म

जैन धर्मावलम्बी विशेषतः जैन साधु [क्षपणक] अपने धर्म के पालन करने में बड़े कट्टर होते हैं। ये अपने धार्मिक कार्यों में जरा भी ढील न होने देते हैं। इनका मुख्य सिद्धान्त अहिंसा हैं। जैन धर्म अतिप्राचीन है और बौद्धधर्म से पृथक् है। इसमें ईश्वर को सृष्टिका कर्त्ता और पाप पुण्य का फल देने वाला नहीं माना है—ये अपने चौवीस तीर्थंकरों को ईश्वर मानते हैं। तीर्थंकर वे महान पुरुष हैं जो १८ दोषों से रहित हैं। १८ दोष ये हैं—

बल, भोग, उपभोग, दान, प्रतिग्रह (ये पांच अन्तराय हैं) निद्रा, भय, अज्ञान, जुगुप्सा, हिंसा, रति, अरति, रागद्वेष, अविरति, स्मर (काम), शोक और मिथ्यापन। इन्हें कैवल्य-ज्ञान प्राप्त हो जाता हैं। जब इनका शरीर-पात होता है तब ये सिद्ध कहलाते हैं। इन्हीं को जैन ईश्वर कहते हैं। तीर्थंकरों को जीवनमुक्त कह सकते हैं। पहले तीर्थंकर ऋषभदेव थे। इनका काल अत्यन्त प्राचीन है और सब से पीछे के तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी थे जो बुद्धदेव के समकालीन थे। इनके उपलक्ष में स्थापित किया सम्वत वीर सम्वत कहलाता है जो इस समय २४४८ है। जैन धर्म के तीन मूल तत्व हैं—सम्यग्-दर्शन, सम्यग्-ज्ञान और सम्यक् चरित्र। जैनोक्ततत्वों में रुचि होना सम्यग्-दर्शन है। मोह और संशय रहित ज्ञान को सम्यग्-ज्ञान कहते हैं—मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्याय और केवल—ये इस ज्ञान के पांच प्रकार हैं। निन्दनीय योगों के सर्वथा त्याग को चारित्र कहते हैं। पापकी ओर ले जाने वाली कारणरूप क्रियाओं की निवृत्ति सम्यक्-चारित्र है। इसके पांच अङ्ग हैं अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्म-चर्य और अपरिग्रह।

सम्यग्-दर्शन के अन्तर्गत नव तत्वों का विवरण है—नव तत्व यह हैं—

१ जीव, २ अजीव ३ पुण्य ४ पाप ५ आश्रव (कर्म फलों का आत्मा की ओर आना), ६ सम्वर (कर्म फलों की धारा को रोकना), ७ निर्जरा (कर्म बन्धनों को तोड़ना), ८ कर्मबन्ध, ९ मोक्ष। इन सब का सविस्तर विवरण जैन ग्रन्थों में देखो।

सम्यग् चारित्र के पांच अङ्ग अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह हैं। येही पंच महाव्रत हैं जो जैन साधु रखते हैं। इन्हीं व्रतों के आधार पर श्रावकों के १२ व्रत हैं। इन व्रतों के पालन करने से मनुष्य आदर्श हो जाता है।

जैन, जीव को ज्ञान स्वरूप मानते हैं। जीव के पुनर्जन्म को भी मानते हैं। कर्म सिद्धान्त के पूर्ण पक्षपाती हैं। अहिंसा धर्म को चरितार्थ करने के लिये जैन साधु रेल गाडी तथा अन्य प्रकार की गाडी में नहीं बैठते हैं। सदा पैरों चलते हैं। जूता नहीं पहनते हैं। जल को छान कर पीते हैं वल्कि विना औंटा जल नहीं पीते हैं। कन्द मूल फल नहीं खाते हैं, कच्ची तर-कारियां भी नहीं खाते हैं, बगल में मुलायम सूत के डोरों का झब्बा रखते हैं, नीची नजर कर चलते हैं, जहां तक बनता है बहुत कम जल काम में लाते हैं। स्नान नहीं करते परन्तु शुद्धि रखने के लिये गीले वस्त्र को शरीर पर फेर कर मैल साफ कर लेते हैं, मुख-वस्त्रिका को हाथ में रखते हैं और बोलते समय मुख के आगे रखकर बोलते हैं यदि पहनने के वस्त्र बहुत मैले हो जावें तो इन्हें धो भी डालते हैं यह नियम मन्दिरमार्गी श्वताम्बर–सम्प्रदाय के साधुओं के हैं जिन की संख्या अधिक हैं परन्तु स्थानकवासी जैन साधु जिन की संख्या अल्प है यह नियम हैं। कि, स्नान नहीं करते हैं, मुँह पर वस्त्र बांधे रहते हैं वस्त्रों को नहीं धोते हैं इस धर्म का कुछ हाल सर्वदर्शनसंग्रह में है।

बौद्धधर्म

बौद्ध धर्म भगवान् बुद्ध का चलाया हुआ है। इन का जन्म कपिल वस्तु नामक स्थान में हुआ था। इनका मृत्युकाल ईस्वी सन् के ५४३ वर्ष पहले का है। बौद्ध लोग न ईश्वर न आत्मा और न वेद को मानते हैं–इस कारण इन्हें नास्तिक कहा है। बौद्धावलम्बियों की संख्या संसार के सब धर्मावलम्बियों से अधिक है–यह ४० करोड़ है। महात्मा बुद्ध ने इस धर्म को अहिंसा और दया की भित्ति पर स्थापित किया था लेकिन खेद है कि बौद्ध लोग प्रायः मांसाहारी हैं,अहिंसा और दया पालन का यश जैनों के हाथ ही रहा। बौद्ध धर्म में पहला मंत्र जिसे सब बौद्धों को तीन बार पढ़ना चाहिये त्रिशरणात्मक है और वह यह हैः—

१ बुद्धं शरणं गच्छामि–बुद्ध की शरण में जाता हूं।
२ धर्मं शरणं गच्छामि–धर्म की शरण में जाता हूं।
३ संघं शरणं गच्छामि–संघ की शरण में जाता हूं।

इस धर्म का दूसरा अङ्ग है पांच प्रकार की प्रतिज्ञाएंः—

१ मैं हिंसा न करूंगा।
२ मैं चोरी न करूंगा।
३ मैं ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा।
४ मैं झूठ न बोलूंगा--सत्य बोलूंगा।
५ मैं सुरादि मादक वस्तुओं को न ग्रहण करूंगा।

ये पांचों प्रतिज्ञाएं सनातनधर्म के पांचों यमों और जैनों के पांचों महाव्रतों से मिलती हैं। उन्हीं का रूपान्तर है।

बौद्ध धर्म के चार मूल तत्व हैं :—

१ संसार में दुःख का अस्तित्व।

२ दुःख की उत्पति का कारण।

३ दुःख का नाश।

४ दुःख विध्वंस करने का मार्ग।

जन्म, मरण, जरा, वियोग, राग द्वेषादि से दुःख उत्पन्न होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह--इन वासनाओं को नष्ट करने से इन दुःखों से बच सकते हैं। यदि वासना का नाश नहीं हुआ तो आवागमन का चक्र निरन्तर चलता रहेगा। यदि पापों का नाश होजावे तो निर्वाण प्राप्ति होसकती है। अनिर्वचनीय शान्तिमय आनन्दावस्था का नाम निर्वाण है। निर्वाण प्राप्ति निम्न लिखित अष्टाङ्ग मार्ग पर चलने से होती है—इसी से दुःख का विध्वंस होता है।

अष्टाङ्ग मार्ग यह हैं:—

१ सम्यग् दृष्टि—कर्म सिद्धान्त पर पूर्ण विश्वास रखना-जैसा कर्म होता है वैसा फल मिलता है। मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार ही फल पाता है।

२ सम्यक्-कल्पना—शुद्ध और सच्चे विचार। पापकर्मों से निवृत्ति और संसार के प्राणियों पर दया करने के विचार।

३ सम्यग्-वचन—सदा सच बोलना, निन्दा करने में निवृत्ति, सब से दयाभाव से बोलना और निरर्थक बातचीत न करना।

४ सम्यक्-कर्मान्त—शरीर से किसी प्रकार हिंसा न करना इत्यादि।

५ सम्यग् आजीव—पाप कर्म से कमाई हुई सम्पत्ति से जीवन निर्वाह न करना। ऐसी अजीविका करना जिसके करने में कोई पाप कर्म न करना पड़े।

६ सम्यग्-वीर्य—सच्चाई के कार्य करना, पाप कर्मों का विचार भी न करना और शुभ कर्यों की वृद्धि करना।

७ सम्यक्-स्मृति—'मेरा शरीर नाशवान् है' 'मेरी देह में मल भरा है' ऐसी ऐसी बातों को याद कर विचार करना।

८ सम्यक्-समाधि—चित्त को एकाग्र कर ध्यान लगाना। सुख दुःख की असारता का विचार कामादि पाप कर्मों से छुटकारा देता है। अच्छे से अच्छे कर्म जो हम कर सकते हैं। निर्वाण कैसे प्राप्त हो सकता है। इन्ही सब बातों का विचार करे और ध्यान लगावे।

बौद्धग्रन्थों में ऊपरोक्त बातों का सविस्तर विवेचन दिया है। इस समय बौद्धधर्म की दो मुख्य सम्प्रदायें हैं—हीनयान और महायान। लङ्का, श्याम, भारत और ब्रह्म देश के बौद्ध हीनयान के अनुयायी हैं और अशोक के संस्करण को प्रामाणिक मानते हैं। चीन, जापान, तिब्बत तथा उत्तरी एशिया के समस्त बौद्ध कनिष्क का संस्करण प्रामाणिक मानकर तदनुसार आचरण करते हैं। और महायान के अनुयायी हैं। हीनयान वाले स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा से उपवासादि करते हैं। महायान वाले निर्वाण प्राप्ति के उद्देश्य से अध्यात्मज्ञान का अनुशीलन और ध्यानयोग का अवलम्बन करते हैं। इनका विश्वास है कि ध्यान द्वारा दुःख माया ममता आदि सब बातें दूर हो जाती हैं। बौद्धों का पवित्र

ग्रन्थ त्रिपिटक हैं जिस में सूत्र, विनय और अभिधर्म सम्बन्धी बुद्ध के उपदेशों का संग्रह है। इस संग्रह के कई संस्करण प्राचीन काल में हुये थे जिन में से अशोक और कनिष्क के संस्करण मुख्य हैं। और उन्हीं के अनुसार हीनयान और महायान दो सम्प्रदायें हैं। बौद्धों के दर्शनशास्त्र बड़े प्रवल हैं। उनमें मुख्यातः तीन मत हैं:—

१ सर्वास्तित्ववाद—इसके अन्तर्गत सौत्रांतिक और वैभाषिक हैं।
२ विज्ञानवाद—इसके अन्तर्गत योगाचार मत है।
३ शून्यवाद—इसके अन्तर्गत मध्यमिकशाखा है।

इन मतों का खण्डन शारीरिक भाष्य के दूसरे अध्याय में भली भाँति किया गया है। बौद्धधर्म विषय में सर्व दर्शन संग्रह भी पढ़ने योग्य है।

वार्हस्पत्यसूत्रों में दूसरे अध्याय में १५, २८, और ३४ सूत्रों का सम्बन्ध भी बौद्ध धर्म से है। इन सूत्रों में बौद्धधर्म के विषय में जो कुछ कहागया है वह अप्रामाणिक है और माननीय नहीं है।

शाक्त।

शाक्त—जगत् की रचना ईश्वर के हृदय में इच्छा उत्पन्न होने से मानी गई है—इस इच्छा का नाम शक्ति है। इस के कई अन्य नाम भी हैं जैसे प्रकृति, माया, महामाया आदि। ईश्वर पुरुषतत्व है तो यह शक्ति स्त्रीतत्व है—हैं दोनों तत्व परमावश्यक—इन दोनों तत्वों के विना सृष्टि का होना असम्भव है। स्त्री तत्व की उपासना अत्यन्त प्राचीन काल से होती रही है। जिस सम्प्रदाय में इस की उपासना का प्रचार है वह शाक्त

सम्प्रदाय कहलाता है। भारतवर्ष में यह मत बहुत पुराना है और उस का तन्त्रशास्त्र एक स्वतंत्र ग्रन्थमाला है। तंत्रग्रंथों में शिव पार्वती का सम्वाद है, और शाक्त मत के सब रहस्य इस सम्वाद द्वारा ही बताये गये हैं। सब शाक्त लोग एक ही शक्ति की उपासना नहीं करते हैं। शक्ति के भिन्न भिन्न रूपों के उपासक है। इन रूपों में कुछ ये हैं—काली, महाकाली, भद्र-काली, तारा, जगद्धात्री, त्रिपुरा, रुद्रभैरवी, वागीश्वरी, दुर्गा आदि आदि।

शाक्तों के मुख्य दो भेद—पश्वाचारी और वीराचारी हैं ये दोनों भेद सात शाखाओं में विभक्त है जिन के ये नाम हैं:—वेदाचारी, वैष्णवाचारी, शैवाचारी, दक्षिणाचारी, वामाचारी, सिद्धान्ताचारी और कौलाचारी। इन में कौलाचारी सर्वश्रेष्ठ कहे जाते हैं। ये लोग महा तंत्र के साधन के लिये दिशा, काल, तिथि, नक्षत्रादि नियमों की आवश्यकता नहीं समझते हैं। इन के ग्रन्थों में कहा है कि सच्चा कौल वह है जिसे कीचड़ और चन्दन, पुत्र और शत्रु, श्मशान और गृह, काञ्चन और तृण में कोई भेद दिखाई न दे। यद्यपि शाक्त सात प्रकार के हैं तदपि इनमें दो भेद ही मुख्य हैं—दक्षिणाचारी और वामाचारी। इन्हीं को पश्वाचारी और वीराचारी भी कहते हैं। दक्षिणाचारी मद्य मांस का सेवन नहीं करते है। इनकी उपासना विधि भी वैदिक और पौराणिक विधि से मिलती है। इतनी बात तो जरूर है कि पशु बलि को यह भी अनुचित नहीं समझते हैं।

वामाचारी शक्तिस्वरूपा कुल स्त्री की पूजा करते हैं और उस में पञ्च तत्वों का व्यवहार करते हैं—पंचतत्व हैं—मद्य, मांस,

मत्स्य, मुद्रा और मैथुन। मुद्रा उस उपकरण सामग्री को कहते हैं जो मद्य पान के साथ खाई जाती है। इन की कोई पूजा इन पञ्च मकारों के विना नहीं होती है। इन का कथन है कि ये पञ्च मकार महापातक को दूर करते हैं।

ये लोग नव कुल मानते हैं। उन्हीं कुलों की कन्याएं नव कुल कन्याएं कहलाती हैं। ये हैं--नटी, कापाली, वेश्या, धोबिन, नाइन, ब्राह्मणी, शूद्रकन्या, गोपकन्या, मालिन। इन के सिवा परपुरुषगामिनी विधवा स्त्रियां कुलाङ्गना कहलाती हैं। इन का विश्वास है कि इन में से जो रूपवती, युवती, सुशील और भाग्य वती हो उस की पूजा करने से सिद्धि प्राप्त होती है। इनकी बहुत सी क्रियाएं इतनी अश्लील हैं कि उन का उल्लेख करना सर्वथा अनुचित है। इस सम्प्रादय के लोग बंगाल और आसाम में बहुत हैं--यातो थोड़े बहुत सभी जगह हैं। इन का प्रधान तीर्थ० स्थान आसाम में कामाख्या देवी का मंदिर है। ज्वालामुखी, विन्ध्यवासिनी, बाला, वगुलामुखी, काली आदि देवियां और भैरव, उन्मत्त भैरव, काल भैरव आदि इनके उपास्य देव हैं।

शाक्तों के ही एक दल का नाम करारी या कपाली है। ये नर बलिदान करते थे। मूत्र से भरी खोपड़ी हाथ में रखते हैं और हड्डियों की माला पहनते हैं। इन्हें अघोरी भी कहते हैं।

वैष्णव

विष्णु की पूजा करने वाले वैष्णव कहलाते हैं–इन में पांच मुख्य सम्प्रदाय हैं विष्णुस्वामी, रामानुज, माध्वाचार्य निम्बार्क और चैतन्य–इन आचार्यों की स्थापित की हुई सम्प्र-

दाएं मुख्य हैं—वल्लभाचार्य ने विष्णु स्वामी के प्राचीन सम्प्रदाय को पुनर्जीवित किया था। इन सब सम्प्रदायों में मांस मदिरा आदि का त्याग है। भक्ति-मार्ग मोक्ष का साधन है। विष्णु भगवान की मूर्ति का पूजन है। इन के आचार विचार शुद्ध होते हैं। वलिदान निषेध्य है। विष्णु भगवान् भक्तवत्सल शान्त और दयालु हैं, वह संसार का पालन करते हैं और वार वार धर्म-स्थापन और दुष्टनाश करने को अवतार लेते हैं। यही सब देवों में श्रेष्ठ समझे जाते हैं वह अनादि, अनन्त, अविकारी, सच्चिदानन्द पर ब्रह्म हैं।

रामानुजः—उत्तर भारत में रामानन्द जी के सम्प्रदाय का अधिक प्रचार है। ये रामचन्द्र जी और सीता जी के उपासक हैं रामानन्द के शिष्यों ने भिन्न भिन्न शाखाएं इसी सम्प्रदाय की स्थापित की हैं।

वैष्णव साधुओं में सात दल प्रधान हैं:—

निर्वाणी, खाकी, सन्तोषी, निर्मोही, बलभद्री, टाटाम्बरी और दिगम्बरी।

रामानन्द के प्रधान शिष्य १२ थे और उन में कई के नाम पर भिन्न भिन्न पंथ चले हैं—

१२ शिष्यों के नाम हैं:--कबीर, रयदास, पीपा, सुरसुरानन्द सुखानन्द, भावानन्द, धन्ना, सेन, महानन्द, परमानन्द और श्रियानन्द।

वैष्णव-सम्प्रदाय में मुख्यतः विष्णु भगवान् के कृष्ण और राम अवतारों की उपासना है।

शैव

शिव यानि महादेव के पूजने वाले शैव कहलाते हैं। शिव की पूजा अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है—इसके अनेक अभ्रान्त प्रमाण हैं। शैवों में गृहस्थ और वैरागी—दोनों होते हैं भस्म-लेपन, रुद्राक्ष-धारण, शैव मंत्रों का जप इत्यादि शैवों के लक्षण हैं। शैव वैरागियों के भी कई भेद हैं। योग शास्त्र पर इस सम्प्रदाय का मुख्याधार है। शैव लोग बंगाल में कम हैं पर अन्य प्रान्तों में अधिक हैं—दक्षिण में शैवों की संख्या अच्छी है। अविमुक्त अर्थात् काशी इनका मुख्य तीर्थस्थान है। रसेश्वर, प्रत्य भिज्ञा, पाशुपत, लिंगायत अथवा वीर शैव, आदि आदि शैव सम्प्रदाय के अन्तर्गत भेद हैं।

इतिहास और पुराण

प्राचीन इतिहास रामायण (वाल्मीकिकृत) और महाभारत (व्यासकृत) हैं। पुराण १८ हैं। इतने ही उपपुराण हैं। इनमें हिन्दू-धर्म, हिन्दू सभ्यता, हिन्दू राजनीति, सृष्टि की उत्पत्ति उसका नाश, वंश, मन्वन्तर, वंशजों का चरित्र इन सब बातों का विवरण है। पुराण के लक्षण इस श्लोक में दिये हुये हैं:—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितश्चैव पुराणं पञ्च लक्षणम्॥

पुराण में पांच लक्षण होते हैं—सृष्टि, प्रलय, वंश, मन्वन्तर और वंशजों का चरित्र। उनमें इन्हीं पांच बातों का सविस्तर विवरण है। इनके साथ ही साथ हिन्दू धर्म, हिन्दू सभ्यता, हिन्दू राजनीति, हिन्दूरीतिरिवाज आदि अनेक बातों का उल्लेख होता है। पुराण व्यासजी के रचे हुये माने जाते हैं।

लोका लोक
शुद्धोदक सागर
पुष्कर द्वीप
दधिसा.
शाक द्वीप
क्षीरसा.
क्रौंचद्वी.
घृतसा.
कुशद्वीप
सुरासा.
शाल्मलिद्वी.
इक्षुरस सागर
प्लक्षद्वी
क्षारसा.
जंबूद्वी
मेरु
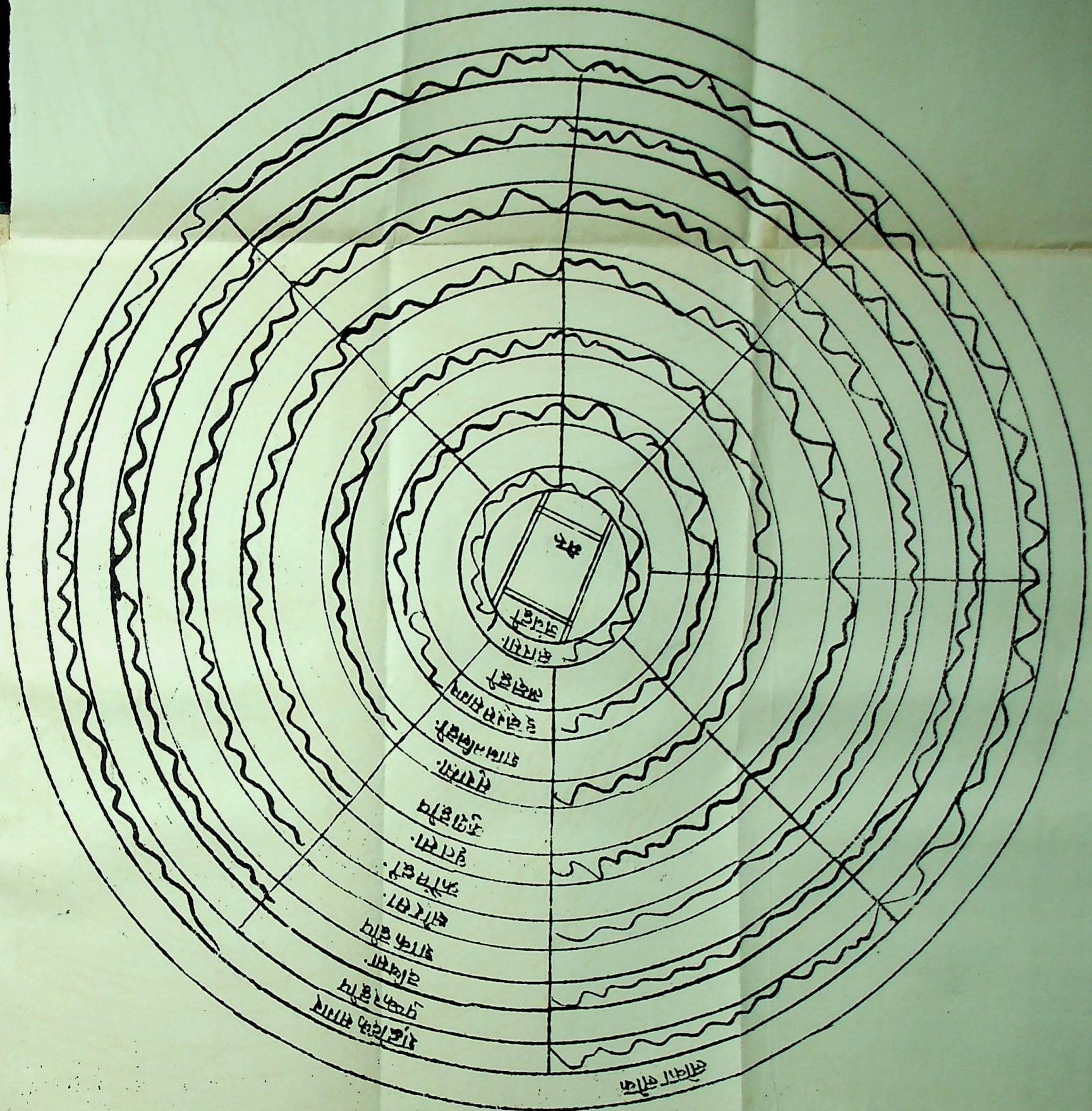
शि
की पूजा
अभ्रान्त
भस्म-ले
लक्षण
सम्प्रदा
प्रान्तों
अविमु
भिज्ञा,
सम्प्रद

(व्या
धर्म,
नाश
रण

औ
वि
राज
है

जम्बू द्वीप
क्षार सागर
कुरु वर्ष
श्रृङ्गवान पर्वत
हिरण्यमयवर्ष
श्वेत पर्वत
रम्यक वर्ष
नील पर्वत
केतुमाल
मेरु पर्वत
भद्राश्व
इलावृत
जम्बू वृक्ष
निषध पर्वत
हरिवर्ष
हेमकूट पर्वत
किन्नर वर्ष
हिमालय पर्वत
भारतवर्ष
क्षारसागर
क्षारसागर
क्षारसागर
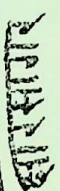
वि
की पूज
अज्ञान
भस्म-ले
लक्षण
सम्प्रद
प्रान्तों
अविश
भिज्ञा
सम्प्र

(व्य
धर्म
नाः
रण

अ
वि
रा

१८ पुराण ये हैं:—१ विष्णु, २ भागवत, ३ शिव, ४ नारदीय, ५ गरुड़, ६ पद्म, ७ वाराह, ८ ब्राह्म ९ ब्रह्माण्ड, १० ब्रह्म-वैवर्त, ११ मार्कण्डेय, १२ भविष्य, १३ वामन, १४ लिङ्ग, १५ स्कन्द, १६ अग्नि, १७ मत्स्य और १८ कूर्म पुराण।

१८ उपपुराण ये हैं:--सनतकुमार, २ नृसिंह, ३ स्कन्द, ४ नारदीय, ५ महेश्वर, ६ दुर्वासस, ७ कपिल, ८ औशनस ९ वरुण, १० कालिका, ११ साम्ब, १२ नन्दी, १३ सौर, १४ पराशर, १५ आदित्य, १६ भार्गव, १७ वाशिष्ठ, १८ भविष्योत्तर इनके सिवा बृहद्धर्म उपपुराण, मुद्गल उप-पुराण, कल्कि उपपुराण, आदि भी मिलते हैं।

परिशिष्ट (२)

भूगोल विषयक.

समस्त पृथिवी पचास करोड़ योजन है । इसमें सात द्वीप और सात समुद्र हैं । सात द्वीप ये हैं:—

जम्बूप्लक्षशाल्मलिकुशक्रौंचशाकपुष्करसंज्ञास्तेषां परिणामं पूर्वस्मात् पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो यथासंख्यं द्विगुणमानेन बहिः समंतत उपक्लृप्ताः ॥ ३२ भागवत पुराण पंचम स्कन्ध प्रथम अध्याय

१ जम्बू, २ प्लक्ष, ३ शाल्मलि, ४ कुश, ५ क्रौञ्च, ६ शाक, ७ पुष्कर । इनका विस्तार इस प्रकार है कि पहले से दूसरा द्विगुण है और दूसरे से तीसरा और तीसरे से चौथा इसी प्रकार उत्तरोत्तर द्विगुण होते गये हैं । जम्बू द्वीप की चौड़ाई १ लाख योजन है । पूर्वोक्त गणना से प्लक्ष द्वीप की २ लाख योजन है. शाल्मलि की ४ लाख, कुश की ८ लाख, क्रौंच की १६ लाख, शाक की ३२ लाख पुष्कर की ६४ लाख योजन है । प्रत्येक द्वीप के चारों ओर समुद्र है । इस प्रकार सात समुद्र हैं जिन के नाम ये हैं:—

क्षारोदेक्षुरसोदसुरोदघृतोदक्षीरोददधिमण्डोदशुद्धोदाः सप्त जलधयः सप्त द्वीपपरिखा इवाभ्यंतरद्वीपसमाना एकैकस्थेन यथानुपूर्वं सप्तस्वपि बहिर्द्वीपेषु पृथक्पयित उपकल्पिता स्तेषु जंब्वादिषु बर्हिष्मतीपतिरनुव्रतानात्मजानाग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुहिरण्यरेतोघृतपृष्ठमेधातिथिवीतिहोत्रसंज्ञान्यथासंख्येनैकैकस्मिन्नेकमेवाधिपतिं विदधे ॥ ३३

भागवत पुराण, पंचम स्कन्ध, प्रथम अध्याय.

१ क्षारोदसागर (खारी पानी का समुद्र), २ इक्षुरसोदसागर (गन्ने के रस के समान जल का समुद्र), ३ सुरोदसागर (शराब के समान जलका समुद्र), ४ घृतोद सागर (घी के समान जल का समुद्र) ५ क्षीरोद सागर [दूध जैसे जल का समुद्र], ६ दधि मण्डोद सागर [दही जैसे जलका समुद्र] और ७ शुद्धोद सागर [मीठे पानी का समुद्र]

द्वीपों और समुद्रों का नकशा दिया है उसे देखो। यह नकशा श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार है लेकिन मत्स्य पुराण में इन द्वीपों और सागरों के नाम और स्थान में कुछ अन्तर है। उसके अनुसार द्वीप और उनके समुद्र इस प्रकार हैं।

द्वीप	समुद्र
१ जम्बू	क्षार सागर
२ शाक	क्षीर सागर
३ कुश	घृत सागर
४ क्रौंच	दधि सागर
५ शाल्मलि	सुरा सागर
६ गोमेद	इक्षुरस सागर
७ पुष्कर	शुद्धोदक सागर

शुद्धोदक समुद्र के परे लोकालोक पर्वत है जिसके एक ओर प्रकाश है और दूसरी ओर अंधेरा क्योंकि उस ओर सूर्य नहीं है।

जम्बू द्वीप ९ वर्षों अर्थात् भूखण्डों में विभक्त है। इसके बीच के खण्ड का नाम है इलावृत जिसके बीच में मेरु पर्वत है। यह पर्वत गोलाकार है और चार भागों में विभक्त है और इसका चारों ओर विस्तार २४ हजार योजन है। पूर्वोक्त चारों भाग भिन्न भिन्न

रंग के हैं। पूर्वी भाग सफेद रंग का है जो ब्राह्मणों का वर्ण है। उत्तरी भाग लाल रंग का है जो क्षत्रियों का वर्ण है। दक्षिणी भाग पीले रंग का है जो वैश्यों का वर्ण है और पश्चिमी भाग काले रंग का है जो शूद्रों का वर्ण हैं। नीचे का नकशा देखोः—
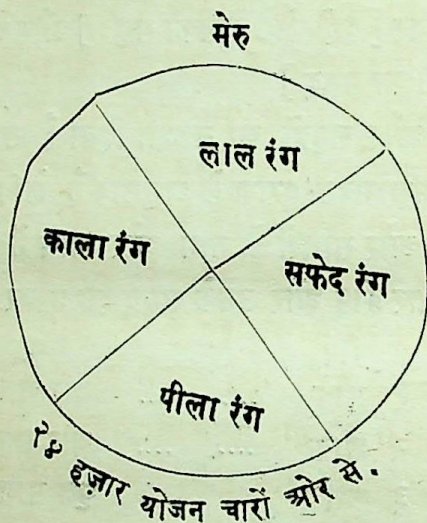
यह पर्वत विना धूंएं के जलते हुये कोले के समान चमकता है। उसका उत्तरी भाग उत्तर मेरु और दक्षिणी भाग दक्षिण मेरु कहलाता है।

इलावृत के उतर में नील पर्वत है। उसके परे रम्यक वर्ष है इस वर्ष के उत्तर श्वेत पर्वत है जिसके परे हिरण्यवर्ष है। हिरण्य वर्ष के उत्तर में शृङ्गवान पर्वत है जिसके परे कुरु वर्ष है। इसी प्रकार इलावृत के दक्षिण में तीन पर्वत और तीन वर्ष हैं। जैसे इलावृत के दक्षिण में निषध पर्वत है और उसके दक्षिण में हरि-वर्ष है। हरिवर्ष के दक्षिण में हेमकूट पर्वत है और इस पर्वत के

दक्षिण में किंनर वर्ष है किंनर वर्ष के दक्षिण में हिमालय पर्वत है और इसके दक्षिण में भारत वर्ष है। इलावृत के पूर्व में भद्राश्व खण्ड है और पश्चिम में केतुमाल खण्ड। इस प्रकार जम्बू द्वीप मुख्यतः नव वर्षों या खण्डों में विभक्त है और उस में सात मुख्य पर्वत हैं जो वर्षों की सीमाएं हैं। इलावृत में मेरु के दक्षिण और निषधपर्वत के उत्तर में जम्बूवृक्ष है जिसे 'सुदर्शन' भी कहते हैं। यह वृक्ष बहुत बड़ा है और इस में फल हमेशा रहते हैं। यहां पर सिद्ध और चारण भ्रमण करते हैं। यह वृक्ष इतना ऊँचा है कि आकाश को छूता है। इस के फलों के रस से एक नदी बहती है और वृक्ष की जड़ को सींचती है। इस रस को इलावृत के नर नारी पीते हैं। इस के पीने से उन्हें न कभी भूख लगती है, न दुःख होता है, न निर्बलता होती है और न कभी थकावट होती है। इस वृक्ष का गोंद सुवर्ण सदृश होता है और देवी-देवताओं के गहनों के काम आता है यहां की भूमि में यह गुण है कि वह मनुष्यों के मल मूत्र और उन के मृतक शरीरों को भक्षण कर जाती है।

पूर्वोक्त पर्वतों पर इस प्रकार की योनियां रहती हैं, अर्थात्—

हिमालय—की गुफाओं में राक्षस और पिशाच।

हेमकूट—पर गन्धर्व और अप्सराएं।

निषध—पर शेष, वासुकि, तक्ष और नाग।

महामेरु—पर देवता क्रीड़ा करते हैं।

नील पर्वत–पर जहां नीलम उत्पन्न होते हैं सिद्ध, महर्षि और दानव रहते हैं।

श्वेत पर्वत–पर दैत्य रहते हैं।

शृङ्ग पर्वत--पर पितर गण।

किंनर–किंनर वर्ष में रहते हैं—इन का सिर मनुष्य का और शरीर घोड़े का होता है।

पहले कहे हुये वर्षों में भारतवर्ष कर्म भूमि है यह उत्तर से दक्षिण तक १००० योजन है। कन्या कुमारी से उत्तर की ओर गङ्गा तक चौड़ा होता गया है और वहां से १०००० योजन तक की ऊंचाई तक वक्र रेखा में हो गया है। अभिप्राय उत्तरी पर्वत श्रेणियों से है जो पूर्व की ओर फैलती चली गई हैं।

भारतवर्ष के ९ भाग हैं–इन्द्र द्वीप, कशेर, ताम्रपर्णी, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वरुण और नवमाँ यह भाग है जिस के चारों ओर समुद्र है। म्लेच्छ इस की सीमाओं पर रहते हैं, किरात पूर्व में और यवन पश्चिम में। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बीच में रहते हैं और धर्म, कर्म वाणिज्यादि करते हैं। यह अपना अपना वर्ण धर्म पालते हैं। यहां धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरुषार्थ माने जाते हैं।

भारतवर्ष में सात मुख्य पर्वत हैं–महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, ऋक्षवान, विन्ध्य, पारियात्र। इनके आस पास में हजारों छोटे छोटे पहाड़ हैं।

मुख्य नदियां ये हैं:–गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, सतलज, चन्द्रभागा, यमुना, सरयू, एरावती, वितस्ता, देविका, कुहु,

गोमती, धौतपापा, वाहुदा, दृष्टवती, कौशिकी, तृतीया, निश्च-ला, गंडकी, इक्षु, लोहिता—ये सब हिमालय पर्वत से निकलती हैं।

पारियात्र पर्वत से निकलने वाली नादियों में कुछ ये हैं:—

वेदस्मृति, वेत्रवती, पार्णाशा, नर्मदा, कावेरी, माही, परा, धनवती, रूपा, विदुशा, वेणुमती, क्षिप्रा, अवन्ती, कुन्ती।

ऋक्षवान पर्वत से निकल ने वाली नादियां:—मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, पिप्पली, स्पनी, चित्रोत्पला, विमला चश्चला, धूतवाहिनी, शक्तिमन्ती, शूनी, लज्जा, मुकुटा, हृदिका।

विन्ध्य पर्वत से ये नदियां निकलती हैं:—ताप्ती, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, छिप्रा, ऋषभा, वेणा, वैतर्णी, विश्वमाला, कुमुदवती, तोया, महागौरी, दुर्गमा, शीला।

सह्य पर्वत से ये नदियां निकलती हैं:—गोदावरी, भीमरथी, कृष्णवेणी, बनजुला, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्या, कावेरी।

मलयाचल से निकलनेवाली ये नदियां हैं:—कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पलाजा, उत्पलावती।

महेन्द्र गिरि से ये नदियां निकलती हैं:—त्रिभागा, ऋषिकुल्या, इक्षुदा, त्रिदिवा, चलाताम्रपर्णी, मूली, शर्वा, विमला।

शक्तिमन्त पर्वत से ये नादियां निकलती हैं:—काशिका, सुकुमारी, मदङ्गा, मन्दवाहिनी, कृपा, पाषिणी।

ये सब पवित्र नादियां समुद्र में गिरती हैं। इन नदियों से हजारों ओर छोटी २ नदियां बनगई हैं और इन में हजारों ही और नदी-नाले आ मिलते हैं।

इन नदियों के किनारों पर ये जनपद (देशखण्ड) हैं—पञ्चाल, कुरु, शाल्व, जांगल, शूरसेना (मथुराप्रान्त) भद्रकास, वाह्य, पट्टचर, मत्स्य (धौलपुर से पश्चिम ओर विराट प्रदेश), किरात, कुल्य, कुन्तल (हैदराबाद, दक्षिण का दक्षिणी पश्चिमी भाग) काशी, कोशल, अवन्ती (नर्मदा के उत्तर अवन्त प्रदेश है) कलिङ्ग (उत्तरी सरकार) मुक, और अन्धक (तिलङ्गाना) ये मध्य देश के जनपद (नगर) हैं। हिमालय और विन्ध्य पर्वत के बीच का देश मध्यदेश है।

सह्य पर्वत और गोदावरी के बीच में बड़े सुन्दर देश हैं जो भरद्वाज मुनि ने रामचन्द्र जी के लिये रचे थे। इन में गोवर्द्धन, मन्दर और गन्धमादन पर्वत हैं।

बाह्लीक (बलख), वातधान, आभीर (विन्ध्य पर्वत पर श्री कोंकसा के दक्षिण और तापनी के पश्चिमी किनारे पर आभीरों का देश है), काल तोयक, पुरन्ध्र शूद्र, पल्लव, आट्टखण्डिक, गान्धार, यवना, सिन्धु (उत्तरी सिन्धु देश), सौवीर, मद्रक, शक, (उत्तरी पश्चिमी सीमा परका देश), द्रुह्य, पुलिन्द, पारद, हारमुर्त्तिक, रामठ, कन्तकार, कैकेय (सिन्धु देश के किनारे), दशनामक, प्रस्थल, दसेरक, लम्पक, तलगान, सैनिक, जाङ्गल। ये सब देश उत्तर में हैं।

पूर्व में यह देश हैं—अङ्ग [भागलपुर के समीप], वङ्ग [समतल यानि पूर्वी बंगाल], मद्गुरक, अन्तरगिरि, वहिरगिरि, प्लवङ्ग, मातङ्ग, यमक, मल्ल, वर्णक, सुह्म, उत्तर प्रविजय, मार्ग, वागेय, मालव, प्राग्ज्योतिष, पुद्र, विदेह (मगध देश के उत्तर पूर्व में हैं

और मगध देश विहार है), ताम्रलिप्तक, शाल्व, मगध और गोनर्दल ।

दक्षिण में ये देश हैं—पाण्डय [तिन्नेवेली], केरल [मला-बर—पश्चिमी घाट और समुद्र के बीच का हिस्सा जो कावेरी से उत्तर को है], चोल [तञ्जोर], कुल्य, सेतुक, सूतिक, कुपथ, वाजीवासिक, नवराष्ट्र, माहिषिक, कलिंग, कारूष, ऐथिक, आ-तव्य, शवर, पुलिन्द, विन्ध्य, पूषिक, विदर्भ [बरार, नर्मदा गोदावरी के बीच का प्रदेश] दण्डक, कुलिय, सिराल, रूपस, तापस, तैतिरिक, कारस्कर और वासिक ।

पश्चिम में ये देश हैं—भारुकच्छ, समाहेय, सारस्वत; काछिक सौराष्ट्र [आनर्त=काठियावाड], आनर्त अबुर्द [आबू] विन्ध्या-चल के पश्चिमी सिरे पर ये देश हैं:—

मालव [मालवा] करूष, मेकल, उत्कल [उडीसा] औन्द्र, माष, दशार्ण [जिसमें दशार्णनदी वहती है], भोज, किष्किंधक [दक्षिण में एक नगर] तोशल, कोशल, [सरयू तट पर प्रदेश का नाम] त्रैपुर [तेवुर], वैदिश, तुम्रुर, तुम्बर, पद्गम, नैषध, अरूप, शौन्दिकेर, वितिहोत्र, अवन्ति, [नर्मदा के उत्तर]

ये देश पर्वतों पर हैं:—निराहार, सर्वग, कुपथ, अपथ, कुथु-प्रावरण, ऊर्ण, दर्व, समुद्रक, त्रिगर्त, मण्डल, किरात, अमर।

इस विषय को स्पष्ट करने के अभिप्राय से हमने दो नकशे दिये हैं। एक में सात द्वीप और सात सागर दिखाये हैं और दूसरे में जम्बू द्वीप, और उसके भाग। श्री मद्भागवत पुराण से कुछ उन श्लोकों को भी प्रमाणार्थ उद्धृत करते हैं। जिनमें सात

द्वीप, सात समुद्र और भारत वर्ष के नदी, पर्वत और उपद्वीपों का वर्णन है। इन तीनों परिशिष्टों को देखो।

श्री मद्भागवत पुराण में सप्तद्वीप, सप्तसागर और भारत वर्ष के पर्वत, उसकी नादियां और उसके उप द्वीपों का उल्लेख।

सप्त द्वीपाः

१ जंबू २ प्लक्ष ३ शाल्मलि ४ कुश ५ क्रौंच ६ शाक ७ पुष्करसंज्ञा स्तेषां परिणामं पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो यथा-संख्यं द्विगुणमानेन बहिः समंतत उपक्लृप्ताः ॥ ३२

सप्त सागराः

क्षारोदेक्षुरसोदघृतोदक्षीरोददधिमंडोदशुद्धोदाः सप्त जलधयः सप्त द्वीपपरिखा इवाभ्यंतर द्वीपसमाना एकैकश्येन यथानुपूर्वं सप्तस्वपि बहिर्द्वीपेषु पृथक्यापित उपकल्पितास्तेषु जम्बादिषु बर्हिष्मतीपतिरनुव्रतानात्मजानाग्नीध्रेध्माजिह्वयज्ञबाहुहिरण्यरेतोघृतपृष्ठमेधातिथिवीतिहोत्रसंज्ञान्यथासंख्ये नैकैकस्मिन्नेकमेवाधिपतिं विधदे ॥ ३३

श्रीमद्भागवत महापुराणे पंचम स्कंध प्रथमोऽध्यायः

भारत वर्ष के पर्वत

भारतेऽप्यस्मिन्वर्षे सरिच्छैलाः संति बहवो मलयो मंगल-प्रस्थो मैनाकस्त्रिकूट ऋषभः कूटकः कोल्लकः सह्यो देवगिरि ऋष्य-मूकः श्रीशैलो वेंकटो महेन्द्रो वारिधारो विंध्यः शुक्तिमानृक्ष-गिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिरिति चान्ये च शतसहस्रशः शैलास्तेषां नितम्बप्रभवा नदा नद्यश्च संत्यसंख्याताः ॥ १६

भारत वर्ष की नदियां

चंद्रवशा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावर्ता तुंगभद्रा कृष्ण वेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती, सिंधुरंधः शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृति ऋषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मंदाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रूश्चंद्रभागा मरुद्वृधा वितस्ता असिक्नी विश्वेति महानद्यः ॥ १८

जंबूद्वीप में अष्ट उपद्वीप जो राजा सगर के पुत्रों ने अश्व की खोज में खोद डाले थे।

तद्यथा १ स्वर्णप्रस्थ २ श्चन्द्रशुक्र ३ आवर्तनो ४ रमणको ५ मंदरो ६ हरिणः ७ पांचजन्य ८ सिंहलो लंकेति ३०।

श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध १९ अध्यायः

परिशिष्ट (३)

युग और मन्वन्तर.

ब्रह्मा का जन्म ब्रह्माण्ड से होता है और उसके जन्म होने से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। हमारी सृष्टि को चतुर्मुख ब्रह्मा ने रचा है। दूसरी सृष्टियां और हैं जिन्हें दूसरे ब्रह्माओं ने रचा हैं जिनके चार से अधिक मुख हैं। ब्रह्मा की आयु १०० वर्ष की होती है। इन में से ५० वर्ष बीत चुके हैं। हम उसकी आयु के ५१ वें वर्ष के पहले दिन में हैं। इस दिन की १३ घड़ी । ६२ पल। ३ विपल घड़ियां बीत गई हैं। एक वर्ष में ३६० दिन या १२ महीने होते हैं। प्रत्येक महीने में ३० दिन होते हैं। प्रत्येक दिन का नाम कल्प है। इस प्रकार ३० कल्प हुये। दूसरे शब्दों में यह कहना है कि ब्रह्मा के एक दिन का नाम कल्प है। प्रत्येक कल्प में १००० चतुर्युग या महायुग होते हैं और एक महायुग में ४ युग होते हैं। युगों की संख्या ये हैं:—

सत्ययुग–१७,२८००० वर्ष
त्रेतायुग–१२,९६००० वर्ष
द्वापरयुग–८,६४००० वर्ष
कलियुग–४,३२००० वर्ष

महायुग–४३,२०००० वर्ष
१०००

कल्प—४, ३२,००००००० वर्ष [ब्रह्मा का एक दिन]
३०

१, २९, ६०००००००० वर्ष [ब्रह्मा का एक महीना]
१२

१५५५२००००००००० वर्ष [ब्रह्मा का एक वर्ष]
१००

१,५५,५२,०००००००००० वर्ष [ब्रह्मा की पूर्णआयु]

एक कल्प में १४ मन्वन्तर होते हैं । अर्थात् ब्रह्मा के एक दिन में १४ मन्वन्तर हो जाते हैं। एक मन्वन्तर ७१$\frac{2}{3}$ महायुगों का होता है । इस समय हम ७वें मन्वन्तर में हैं यानि वैवस्वत मन्वन्तर में, और २८वें महायुग में । और श्रीश्वेतवाराह कल्प में अतः हम २८वें महायुग के कलियुग में हैं । कलियुग में ५०२४ वर्ष बीतगये हैं और ४, २६९७६ वर्ष और बाकी हैं। जब ये बीत जायेंगे तब हम वैवस्वत मन्वन्तर के २९ वें महायुग में पहुंचेंगे। जब ब्रह्मा की पूर्ण आयु हो जाती है तब महाप्रलय होती है। पर कल्प कल्प में दैनिक सृष्टि और प्रलय होती रहती है यानि ब्रह्मा अपने दिन में सृष्टि रचता है और रात्री में उसकी प्रलय हो जाती है ।

तीस कल्पों के नाम ये हैं

१ श्वेत कल्प	५ रौरव
२ नीललोहित	६ प्राण [देव]
३ वामदेव	७ वृहत् कल्प
४ रथन्तर	८ कन्दर्प

९ सद्य
१० ईशान
११ तमः [व्यान]
१२ सारस्वत
१३ उदान
१४ गारुड़
१५ कौर्म
१६ नरसिंह
१७ समान
१८ अग्नेय
१९ सोम
२० मानव
२१ पुमान
२२ वैकुण्ठ
२३ लक्ष्मी
२४ सावित्री
२५ घोर
२६ वाराह
२७ वैराज
२८ गौरी
२९ माहेश्वर
३० पितृकल्प

१४ मन्वन्तरों के नाम

१ स्वयंभूमनु
२ स्वरोचिष
३ औत्तमेय [उत्तम]
४ तमस
५ रैवत
६ चक्षुष
७ वैवस्वत
८ सवर्ण्य
९ रौच्य
१० भौत्य
११ मेरुसवर्ण्य
१२ ऋत
१३ ऋतधाम
१४ विस्वकेष्ण

परिशिष्ट (४)

चाणक्यसूत्रोक्त राजनीति.

राजा को विद्या-विनय-सम्पन्न आत्म-संयमी एवं ज्ञानवान होना चाहिये। ज्ञान से आत्म-ज्ञान प्राप्त होता है और आत्म-ज्ञान से आत्म-शक्ति प्राप्त होती है जिस से सब अर्थों की प्राप्ति होती है। अर्थ-शक्ति से प्रकृति प्राप्त होती है। (प्रकृति का अर्थ है स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड और मित्र) प्रकृति प्राप्त होने पर विघ्न-पूर्ण राज्य का संचालन भी हो सकता है। प्रकृति का कोप सब कोपों में भयंकर है। विद्या-विनय-विहीन राजा से राजा न होना ही अच्छा है। राजा को चाहिये कि सम्पत्ति के दिनों में सहायता प्राप्त करते हुये आत्म-शक्ति को बढ़ावे। जो राजा सहायता विना है उसके विचार कभी पूरे नहीं होते हैं क्योंकि अकेला पहिया गाड़ी नहीं चला सकता है। सहायक वही है जो सुख दुःख का साथी हो। राजा को चाहिये कि वह राज्यभक्त और बुद्धिमान् पुरुष को मंत्री बनावे। अपने समान दूसरे मनुष्य से मन्त्रणा करे- अविनीत मनुष्य से प्रेमवश कभी सलाह मश्वरा न करे। मंत्रणा तथा विमर्श के पश्चात् ही काम शुरू करे। मंत्र की रक्षा करनी चाहिये क्योंकि उस पर कार्य सिद्धि निर्भर है। मंत्र के प्रकाशित होते ही काम बिगड़ जाता है। थोड़ी सी भूल से राजा शत्रुओं

के वश में आ जाता है। अतः मन्त्र की रक्षा करना सर्वथा उचित है—वही राज्य समृद्धि का मूलमन्त्र है। जो राजा कार्य-कुशल नहीं है वह मन्त्र द्वारा सब कुछ जान सकता है। वह मन्त्र-रूपी नेत्र से दूसरों के दोषों को देख सकता है। मन्त्रणा करने के समय ईर्षा द्वेष दूर करदे। जिस विषय में तीन सम्मतियां एक हों वह ठीक है। मन्त्री वही है जो कार्य अकार्य को देख सके। राजा नीति-शास्त्र का आधार है। राजा वही है जो नीति शास्त्र के अनुसार काम करे। उसी पर राज्यप्रबन्ध (तंत्र) और शासन निर्भर है। किसी विषय का कार्यरूप में आना अमात्यमण्डल पर निर्भर है। यह मण्डल ही संधि विग्रह का निश्चय करता है। राजा को चाहिये कि वह शत्रु के कामों की देख रेख करे। यदि आवश्यकता आ पड़े तो शत्रु से संधि करले। उसे अपने लिये शत्रुओं से सदैव बचाना चाहिये। यदि राजा निर्बल हो तो वह किसी बलवान राजा का सहारा ले—कमजोर का सहारा लेने से पीछे पछताना पड़ता है। ऐसे लोगों को जो आपस में ईर्षा रखते हैं, आपस में लड़ादेना चाहिये। राजा को अधिक भोग विलास में रहना अनुचित है। जो भोग-विलास में आसक्त रहता है वह चतुरङ्ग सेना के रहते भी नष्ट हो जाता है। जुआ-री राजा का कोई कार्य भी सिद्ध नहीं होता है। जो राजा शिका-र का शौकीन है उस के धर्म और अर्थ—दोनों नष्ट हो जाते हैं। जो राजा कामासक्त है उसकी सिद्धि होना भी असम्भव है।

राजा प्रजा की रक्षा दण्डनीति द्वारा करता है। अमित्र यानि शत्रु के साथ दण्डनीति का व्यवहार करे। दण्डनीति से राज्य

का ऐश्वर्य बढ़ता है। जहां कमजोर दण्डनीति है वहां मंत्रियों की बन पड़ती है। जहां वह ठीक है वहां मंत्री कुछ भी गड़बड़ नहीं करते हैं। यह समझना चाहिये कि आत्मरक्षा दण्ड नीति पर ही निर्भर है। दण्डनीति का प्रयोग सावधानी से करना चाहिये। दुर्बल राजा का भी अपमान नहीं करना चाहिये क्यों कि अग्नि कितनी ही कम क्यों न हो, जलाने के लिये समर्थ है। प्रवृत्ति का पता दण्ड द्वारा चलता है। राजा को अच्छा शासक होना चाहिये क्यों कि तीक्ष्ण-शासक से सभी घबराते हैं। राजा का धन है विक्रम तथा उत्साह क्यों कि उत्साहियों के वश में शत्रु भी हो जाते हैं। राजा को अपने मित्रों की रक्षा करनी चाहिये। यदि शत्रु का पुत्र मित्र हो तो उस की भी रक्षा करनी चाहिये। शत्रु का छिद्र छोटा हो तो उसे बड़ा कर दिखावे। जहां शत्रु का छिद्र दिखाई दे वहीं चोट करे। शत्रु वही है जो छिद्र देख कर प्रहार करे। राजा को अपना दोष छिपाना चाहिये। शत्रु का कभी विश्वास न करे। इसकी परवाह न करे कि वह [शत्रु] हाथ में आगया है और कुछ नहीं कर सकता है। जहां तक हो शत्रु पर विजय अच्छे बर्ताव से करे। राजा को चाहिये कि वह अपने आत्मीयों के दोषों को दूर करे। मनस्वी लोग आत्मीयों का अपमान सुनकर दुःखी होते हैं। ध्यान रखो कि एक अङ्ग का दोष सारे शरीर को हानि पहुंचाता है। राजा की नीति यह होनी चाहिये-देश जाता हो तो नगर छोड़ दे और नगर के लिये कुटुम्ब का त्याग करदे। राज्य में कोई नई वस्तु निकली हो तो राजा उसका चौथाई भाग ले-बाकी प्रजा को छोड दे। राजा अपने दर्शन प्रजा को देता रहे क्यों कि प्रजा ऐसे राजा को

पसन्द करती है और ऐसे राजा को जो कभी दिखाई न दे और प्रजा से भागता फिरे, नष्ट करती है। राजा को न्यायशील होना चाहिये। उसे अपराध के अनुसार दण्ड देना चाहिये—ज्यादे न कम। जो राजा इस प्रकार न्याय करता है उसे प्रजा माता समान मानती है ऐसे राजा को इस लोक में सुख होता है और मृत्यु-पश्चात् स्वर्ग प्राप्त होता है।

कोई कारवाई राजा के प्रतिकूल न करनी चाहिये। राजा के पास रहने वाले को हमेशा समझते रहना चाहिये कि यह अग्नि है—अधिक पास रहने से जला देती है। राजा से सदैव डरता रहे। राजा को सब देवताओं से बड़ा समझना चाहिये क्यों कि उसकी निकली आग दूर दूर तक भस्म कर देती है। राजा दूर रहते भी हजारों आंखों से देखता है राजा के पास खाली हाथ कभी न जाय और न उस से आंख मिलावे और न उसके विरुद्ध कुछ कहे। उसकी आज्ञा का उल्लङ्घन न करे। उसकी आज्ञानुसार काम करे। राजपरिवार में सदा आता जाता रहे और राजकीय पुरुषों के साथ सम्बन्ध बनाये रखे लेकिन राजदासी से प्रीति न करे।
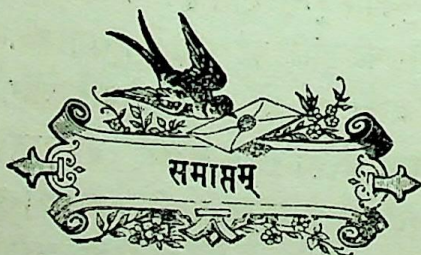
परिशिष्ट (५)

अर्थशास्त्र ।

भारतीय प्राचीन साहित्य आर्य-जाति के चार परमोच्च आदर्श धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के अनुसार चार भागों में विभक्त है । ये चार विभाग हैं,—धार्मिक साहित्य, आर्थिक साहित्य, कामिक साहित्य, और मौक्षिक साहित्य ।

धार्मिक साहित्य के अंग हैं, श्रुति, स्मृति, पुराण, भाष्य तथा अन्य मान्य ग्रन्थ जो स्मृति सिद्धान्तों के आधार पर लिखे गये हैं । स्वायम्भुमनु इस विषय के आदि आचार्य हैं। यह साहित्य अत्यन्त बृहत् है तथा इसका अधिकांश भाग सुरक्षित है । आर्य जाति अभी तक धर्म को प्राणों से भी अधिक प्रिय समझती आई है । इस विषय के धुरन्धर आचार्य अनेक हैं । जिनमें से कुछ के नाम ये हैं,—गौतम, बौधायन, आपस्तम्ब, वशिष्ठ, विष्णु, हारीत, हिरण्याक्ष, उशनस, यम, कश्यप, शंख, मनु, नारद, पाराशर, वृहस्पति, याज्ञवल्क्य, कात्यायनादि । इनमें से अधिकांश के धर्मग्रन्थ प्राप्य हैं । भाष्यकारों में मेधातिथि, कुल्लूक भट्ट, विज्ञानेश्वर (मिताक्षरा) अपरार्क, विश्वरूप, बलंभट्ट जीमूतवाहन (दायाभाग) आदि अति प्रसिद्ध हैं । धर्मशास्त्र सम्बन्धी आधुनिक मौलिक ग्रन्थों में दत्तक-चन्द्रिका, दत्तक मीमांसा, वीर-मित्रोदय, मयूख, विवाद-चिन्तामणि आदि प्रखर पाण्डित्य पूर्ण और गौरव-शाली हैं ।

कामिक साहित्य का अधिकांश भाग उपलब्ध नहीं है। इस विषय के आदि आचार्य नन्दी थे, जिनने कामसूत्रों को एक हज़ार अध्यायों में लिखा था। औद्दालकिश्वेतकेतु ने पाँच सौ अध्यायों के ग्रन्थ द्वारा इसी का प्रचार किया था। बाभ्रव्य ने यही विषय ७ प्रकरणों और २५० अध्यायों में लिखा है। काम-शास्त्र के अन्य धुरन्धर लेखक सुवर्णनाभ, घोटकमुख, गोनर्दीय, गोणिकापुत्र, कुचिमार, दत्तक, चारायण आदि हैं। अन्तिम लेखक वात्स्यायन थे। इनका रचा हुआ कामसूत्र अब भी उपलब्ध है। यह ग्रन्थ बड़े महत्व का है। इस विषय के अन्य उपलब्ध ग्रन्थों में से कुछ के नाम ये हैं:— रति-रहस्य, पञ्चसायक, अनङ्ग रङ्ग, कुचिमारतंत्र आदि। इनमें से वात्स्यायन के काम-सूत्र और अनङ्ग-रङ्ग का अंग्रेजी अनुवाद हो गया है।

मौक्तिक साहित्य के अङ्ग हैं वेद, ब्राह्मणों के आरण्यक और उपनिषद् जिन की संख्या बहुत है, परन्तु उनमें से दस उपनिषद् मुख्य हैं। उपनिषदों के सिवा षट्शास्त्रों का उद्देश्य भी मोक्ष-प्राप्ति है। इनके नाम ये हैं,—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा। इनमें से उत्तरमीमांसा का बड़ा महत्व है। इस पर अनेक भाष्य हैं, जिन में से श्री-शंकराचार्य का भाष्य सर्वोपरि है। इसी ग्रन्थ पर श्रीरामानुजाचार्य तथा अन्य आचार्यों ने भी भाष्य लिखे हैं। मोक्ष-सम्बन्धी साहित्य में प्रस्थान त्रयी—उपनिषद्, वेदान्त सूत्र, गीता और इनके भाष्य प्रसिद्ध हैं। इस विषय का इतना बृहत् साहित्य है कि यदि उसे एकत्रित किया जाय, तो कई पुस्तकालय इन्हीं ग्रन्थों

से भर जावेंगे। यह साहित्य बहुत-कुछ सुरक्षित है। भारतीय धुरन्धर दार्शनिक आचार्य गौतम, कणाद, कपिल, पतञ्जलि, जैमनि, व्यास, शंकर, रामानुज, निम्बार्क, मध्व, वल्लभ आदि हैं। यह साहित्य बड़े महत्व का है और इसी के गौरव से भारत का सिर संसार में आज भी ऊंचा है। इस विषय में भारत संसार भरका गुरु समझा जाता है। पाश्चात्य दार्शनिक पण्डित भारतीय दर्शन शास्त्रों के सामने आज भी नत-मस्तक होते हैं।

आर्थिक साहित्य—यह साहित्य बहुत प्राचीन और किसी समय बृहत् था, किन्तु अब इस विषय के ग्रन्थ बहुत कम उपलब्ध हैं। अर्थ-शास्त्र की प्राचीनता के विषय में इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है कि उसका उल्लेख लगभग सभी प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। वेदों तक में इसका उल्लेख है और कोई कोई तो अर्थ-शास्त्र को ऋग्वेद का उपवेद मानते हैं अथर्ववेद के ४९वें परिशिष्ट चारण-व्यूह में भी इसका वृत्तान्त दिया है। अन्यान्य ग्रन्थ जिनमें इसका उल्लेख है, ये हैं:—

भविष्यपुराण, महाभारत, नारदस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, वात्स्यायन कामसूत्र, भोजप्रणीत युक्ति-कल्पतरु, विष्णुगुप्तकृत पञ्चतन्त्र, घोषप्रणीत बुद्ध-चरित्र, भासकृत प्रतिया-नाटकादि।

जैसे धर्मशास्त्र के आदि-कर्ता स्वायम्भुमनु और कामशास्त्र के नन्दी थे; वैसे ही अर्थ-शास्त्र के प्रथम आचार्य बृहस्पति थे। जिन्होंने इस विषय को तीन हज़ार अध्यायों में लिखा था। किन्तु यह शास्त्र उनके समय से भी पूर्व का है। महाभारत में लिखा है कि ब्रह्मा ने इस

विषय को एक लाख अध्यायों में लिखा। शिवजी ने इसका संक्षेप १० हज़ार अध्यायों में किया, जिसका नाम वैशालाक्ष था। इसके बाद इन्द्र ने इसका संक्षेप पाँच हज़ार अध्यायों में किया और इस संक्षिप्त ग्रन्थ का नाम बाहुदन्तक रखा। इस ग्रन्थ से बृहस्पति ने तीन हज़ार अध्यायों में अपने बार्हस्पत्य सूत्र बनाये, जिनके आधार पर काव्य ने (उशनसने) एक हज़ार अध्यायों में औशनस-सूत्र रचा। दुःख है कि, ये सभी ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। इनमें से बार्हस्पत्य सूत्रों का अल्पांश अभी हाल में ही मिला है, जिसका अंग्रेजी अनुवाद तो होगया है, पर अभी हिन्दी अनुवाद नहीं हुआ। अर्थ-शास्त्र के और भी कितने ही धुरन्धर लेखक हुए हैं। जिन में से कुछ ये हैं—मनु, भारद्वाज, विशालाक्ष, पराशर, पिशुन, कौपिण, पदन्त, वात-व्याधि, बाहुदन्ती पुत्र, गौरशिरा, कौटिल्य इत्यादि।

ईसा से ४००-५०० वर्ष पहिले अर्थशास्त्र-सम्बन्धी निम्न लिखित पांच मत भली भांति प्रचलित थे। मानवमत, बार्हस्पत्यमत, औशनसमत, अम्भीयमत और पाराशरमत। इस समय में जो अर्थशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ उपलब्ध हैं, वे ये हैं—कामन्दकी-नीतिसार, शुक्र-नीति, चाणक्य-नीति, कौटिल्य-अर्थशास्त्र, बार्हस्पत्य-सूत्र (अल्पांश), महाभारत, अग्निपुराण, मानव-धर्मशास्त्र। पिछले तीन ग्रन्थों के कुछ अध्याय इस विषय से सम्बन्ध रखते हैं।

पूर्वोक्त ग्रन्थों में से कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र जो हाल में ही उपलब्ध हुआ है—वह बड़े महत्व का है और पूर्ण है। यह ग्रन्थ, सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य को राज-सिंहासन पर बैठाने

वाले चाणक्य का लिखा हुआ है, जो ईसा से कम से कम तीन सौ या सवा तीन सौ वर्ष पहले का लिखा है। इस ग्रन्थ में उस समय की सभ्यता, राजनीति तथा अन्य बातों का विवरण दिया है। यदि इसे उस समय का प्रामाणिक इतिहास कहें, तो अनुचित न होगा। यह मूल ग्रन्थ संस्कृत में है, पर अब इसके अंग्रेज़ी और हिन्दी अनुवाद भी छप गए हैं * कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र के विषय में तो हम फिर कभी लिखेंगे, परन्तु इस समय पाठकों को बार्हस्पत्यसूत्रों का दिग्दर्शन कराते हैं।

जैसा पहिले लिखा जा चुका है कि बार्हस्पत्य सूत्रों का अधिकांश भाग अनुपलब्ध है, और इस समय जो बार्हस्पत्य-सूत्र नामक ग्रन्थ प्राप्त है, वह या तो उस बृहद्-ग्रन्थ का एक खण्ड है, अथवा उसके विचारों का कुछ सार है। किन्तु यह ग्रन्थ भी प्राचीन है। कुछ पाश्चात्य विद्वानों की यह सम्मति है कि यह ग्रन्थ छठवीं शताब्दि का लिखा है। कोई कोई कहते हैं कि इस ग्रन्थ का सम्बन्ध प्राचीन बार्हस्पत्यसूत्र से कुछ भी नहीं है। पर यह दोनों बातें ठीक प्रतीत नहीं होतीं। इन सूत्रों की रचना प्राचीन सूत्रों के समान है और उन में प्राचीन व्याकरण का प्रयोग भी है। यदि इस विषय में कुछ सन्देह किया जा सकता है, तो केवल इतना ही कि इन सूत्रों का बृहस्पति स्मृति और बृहस्पति-संहिता से कुछ भी सम्बन्ध नहीं मालूम होता। बृहस्पति कई हुए हैं; एक बृहस्पति तो बृहस्पति-संहिता के रचयिता हैं, दूसरे बृहस्पति चार्वाक्य सिद्धान्तों के प्रचारक हैं, जिनके लिखे बृहस्पति सूत्र

* ये अनुवाद पञ्जाब–संस्कृत–बुकडिपो, लाहौर से प्राप्य हैं।

हैं। ये चार्वाक्य सिद्धान्तों से सम्बन्ध रखते हैं। तीसरे बृहस्पति अर्थशास्त्र के आचार्य हैं। हमारा सम्बन्ध इन तीसरे बृहस्पति से है। इनका जीवन-काल अत्यन्त प्राचीन है। हमारे पास इस समय कोई ऐतिहासिक सामग्री नहीं है, जिससे इसका निर्णय किया जा सके। यदि वात्स्यायन-काम-सूत्रों के प्रमाणों को माना जाय, तो इनका जीवन-काल सृष्टि का आदि-समय होता है, क्योंकि इन काम सूत्रों में लिखा है कि जब प्रजापति ने सृष्टि की रचना की, तब उसकी स्थिति के लिए त्रैवर्ग-साधन रचे। इन में धर्म साधन को तो स्वायम्भुमनु ने लिया, अर्थ को बृहस्पति ने और काम को नन्दी ने। जो कुछ भी हो, जिन बृहस्पति के नाम से बार्हस्पत्य-सूत्र विख्यात हैं, उनका जीवन-काल अत्यन्त प्राचीन है। अब हम उपलब्ध बार्हस्पत्यसूत्रों का कुछ हाल लिखते हैं।

बार्हस्पत्य-सूत्र छह अध्यायों में विभक्त हैं। पहिले अध्याय में यह बताया है, कि मनुष्य को अपना चरित्र कैसे निर्माण करना चाहिए; उसे क्या करना और क्या न करना चाहिए; राजा में क्या गुण होना चाहिए; उसे कैसे मंत्री रखने चाहिए और उसका क्या कर्तव्य है। संक्षिप्त रूप से इस अध्याय में राजा के चरित्र सम्बन्धी सभी बातें उल्लिखित हैं। बृहस्पति जी लिखते हैं कि राजा शिकार में बहुत अनुराग नहीं रखे और न स्त्रियों में ही रातदिन रहकर विलासोन्मत्त रहे, क्योंकि इस से आयु क्षीण होती है। उसे अपना समय वेश्याओं, ज्योतिषियों, साधु-सन्यासियों तथा निजी नौकरों के साथ न व्यतीत करना चाहिए। जो लोग स्त्री, जुआ, मदिरापान आदि में अनुरक्त हों, उन्हें अपनी

सेवा में कभी नहीं रखना चाहिए। राजा को काम, क्रोध, मद, मात्सर्य, पैशुन्य आदि दुर्गुणों से बचना, मदिरा कदापि न पान करना, आत्म-संयमी होना, अपने समान सच्चरित्र मनुष्य नौकर रखना, दान करना, हिंसा से बचना, तथा सच्चरित्र पुरुषों को मित्र बनाना चाहिए। उसे ऋणी कभी नहीं होना उचित है। (ऋण तीन प्रकार से होता है, काम-वश होने से, विलासरत होने से, क्रोध अथवा लोभ से।) गूढ़नीति (Policy) के लिए लिखते हैं कि वह एक नदी तीरस्थ वृक्ष के समान है, जिसकी स्थिति दृढ़ नहीं है। इस लिए राजा को उसे हितकारक समझना उचित नहीं। ऐसी ही अनेक बातें इस अध्याय में लिखी हैं। इन बातों पर हमारे राजा-महाराजाओं को भली भांति ध्यान देना चाहिए।

दूसरे अध्याय में उन नियमों और सिद्धान्तों का विवरण है, जिनके अनुसार राजा को व्यवहार करना समुचित है। अर्थोपार्जन के समय लोकायित शास्त्र के अनुकूल चलना चाहिए। काम विषय में कापालिक नियमों का पालन करना और धर्म विषय में आर्हत शास्त्र का अनुकरण करना कर्त्तव्य है। मांस मदिरा आदि विषयों में कापालिक बड़े लिप्त रहते हैं। आर्हत वह सिद्धान्त है, जिसके अनुसार सभी प्रकार की हिंसा त्याज्य है।

यदि राजा के मंत्री अच्छे हों, परन्तु राजा स्वयम् परछिद्र-दर्शी और अधर्मी हो, तो वह राज्य नहीं चला सकता है। जो ऐश्वर्य मद में मत्त हो, लोभ और मान से भरा हुआ हो, वह कमाई हुई सम्पत्ति को भी खो बैठता है। नीति वही है,

जिसका फल धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति हो। काम और अर्थ को धर्म की कसौटी से जांचना चाहिए और धर्म को धर्मशास्त्र से। नीति विरुद्ध पुत्र भी शत्रु है। बालक, दुष्ट, उच्छृंखल, मूढ़, दुराचारी, तीक्ष्ण, तेज स्वभाव वाला और जो अपने को ही सब कुछ समझता है,—ऐसे मनुष्यों के साथ परामर्षादि नहीं करना चाहिए। स्वकार्य सिद्ध करने, स्वयश और स्वप्राण रक्षा करने में यदि अपना सर्वस्व भी छोड़ना पड़े तो छोड़ देना चाहिए। धर्म ही प्रधान है, पुरुषार्थ नहीं। जो सुख अधर्म से मिले, वह शत्रु-सा है जो मनुष्य अपनी बात का सच्चा है और शास्त्रों के वाक्यों पर श्रद्धा रखता है, वह समुद्र को भी पीकर सुखा सकता है। उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। एक दुर्जन कई-एक का नाश कर देता है। पुरुषार्थ पर ही भाग्य निर्भर है। जो अपनी स्त्री में ही रत है और जो आत्मदमन में शक्ति रखता है, उसके बराबर कोई दूसरा नहीं है। सज्जन भय से अपना धर्म नहीं छोड़ देते। राजा को अधर्म तथा वध नहीं करना चाहिए। उसे ऐसी कोई बात नहीं करनी चाहिए, जिससे उसका अपयश हो। इसी प्रकार की बातें इस अध्याय में हैं।

तीसरा अध्याय विद्या-सम्बन्धी है। इस में तत्कालीन धर्म, मत, दार्शनिक सम्प्रदाय, मंत्र, तंत्र, औषधियां, यज्ञ, युग उत्सव आदि का वर्णन है। इतिहास, पुराण, दर्शन, शास्त्रादि पढ़ने का आदेश है। सब से बड़ी बात यह है कि इस अध्याय में केवल पृथिवी का ही वर्णन नहीं है, किन्तु तत्कालीन भारतवर्ष के देश, प्रदेश, नगर, पर्वत, तथा, नदियां, जातियाँ आदि का

पूरा-पूरा विवरण है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह अध्याय बड़े ही महत्व का है।

चौथे अध्याय में शकुनादि का वर्णन है तथा अन्य और भी उपयोगी शिक्षाऐं हैं।

शुभशकुन ये हैं,—मुर्गे की आवाज़, हाथी देखना, हाथी का शब्द, देव-स्तुति, पाठ-ध्वनि, देवताओं की कथा, नेत्रों में अञ्जन, दर्पण में मुख देखना, अलंकार पहनना, ताम्बूल खाना, कर्पूर, चन्दन, धूप, तुरही, शंख, वीणा, मृदङ्ग, ढोलादिक के शब्द—घोष तथा श्वेतपुष्पादि।

अशुभ शकुन ये हैं,—बैलों तथा गिद्धों का दिखाई देना, संध्या की अग्नि-ज्वाला, लड़ते हुए गीदड़ों का रोना, ग्राम या पुर के द्वार पर हिंसक पशुओं के शब्द, देवताओं की प्रतिमाओं से खेद आना इत्यादि।

पाँचवें अध्याय में उपायों का वर्णन है। ये उपाय साम, दाम, भेद, मायोपेक्षा और बध आदि हैं। तेजपुरुषों के साथ सामनीति का प्रयोग करना उचित हैं, अर्थात् उनसे राजीनामा कर लेना चाहिए। डरपोक और पोच मनुष्यों के साथ साम और भेद उपायों का प्रयोग करना चाहिए। लुब्ध मनुष्यों के साथ साम, दाम और भेद उपायों का प्रयोग करना चाहिए। ऐसे मनुष्य जो निरन्तर कष्ट देते हैं, उनके साथ साम, भेद दाम, मायोपेक्षा और बध,—इन सब का प्रयोग करना उचित है। मायोपेक्षा का अर्थ है, कृत्रिम उपेक्षा। सबसे पहिले साम से काम ले, वह यदि निष्फल हो तो दूसरे उपाय सोचना चाहिए। बृहस्पति जो मनोविज्ञान के पूर्ण ज्ञाता हैं। आप कुछ ऐसी बातें

लिखतें हैं, जिनसे मानुषीवृत्तिकी विषमता का पता लगता है। जैसे सम्बन्धी अपने सम्बान्धियों की विपत्ति पर हर्ष करते हैं, हृदय में क्रूरता रखते हुए उनका बुरा करते हैं। सभी भयों में जाति अथवा सम्बन्धियों का भय बड़ा घोर है। जैसे गौओं में दूध स्वाभाविक है, वैसे ही ब्राह्मणों में स्वाभाविक है क्रोध, स्त्रियों में चपलता, जातिवालों में अप्रेम । मित्रता पत्र–स्थित जल-बिन्दु के समान अस्थिर होती है। जो गुरुजनों के हितकारक शास्त्र-वाक्य नहीं सुनते, उनके सिरपर आपत्तिकी घटा सदा रहती है। ऐसे मनुष्यों से सदा दूर रहना चाहिए। लोक-विरुद्ध कोई कार्य करना उचित नहीं । ऐसे कई-एक उपदेश भी इस अध्याय में दिये हैं।

छठवें अध्याय का सम्बन्ध न्याय से है। मनुष्य को देश, काल, नय, अनय देख कर काम करना चाहिए जो कार्य वेद विरुद्ध हो, अपने पुरुषार्थ और मानके विपरीत हो, उसे कभी नहीं करे। जिसके पास धन है, उसके पास मित्र, धर्म, विद्या, गुण, बुद्धि, बलादि सभी-कुछ हैं। जिस प्रकार हस्ती हस्ती के बिना नहीं पकड़ा जा सकता है, उसी प्रकार धन धन के बिना नहीं कमाया जा सकता है। संसार में मूल धन ही है. उससे सब सुगम हो जाते हैं। जिसके पास धन नहीं है, वह मृत पुरुष और चाण्डाल के समान है।

धर्म का मूल विद्या है। इसलिए उसे प्राप्त करना चाहिए। जगत् का मूल विद्या ही है । विद्या सभी–कुछ है। इसी प्रकार की नीति की बातें इस अध्याय में लिखीं हैं।

मूल संस्कृत ग्रन्थ और उसका अंग्रेज़ी–अनुवाद तो छपगया

है*, किन्तु अभी हिन्दी–अनुवाद नहीं छपा है। आशा है, यह भी शीघ्र प्रकाशित हो जायगा।

लालाकन्नोमल।

(श्री शारदा श्रावण १९८०)

अर्थशास्त्र।

भारतवर्ष में अर्थशास्त्र, जातीय साहित्य का एक परमावश्यक अङ्ग अत्यन्त प्राचीनकाल से रहा है । जैसे धर्मविषय के आदि आचार्य मनु हैं और काम-शास्त्र के नन्दी, वैसे ही अर्थ-शास्त्र के आदि आचार्य बृहस्पति जी हैं। भारतीय अर्थ-शास्त्र के मुख्य दो अङ्ग हैं राजनीति और वार्ताशास्त्र। राजनीति में राजाओं की योग्यता उनके कर्तव्य, दण्डनीति के साधन, राज्य शासन के उपाय, शत्रुओं के साथ संधि या विग्रह की व्यवस्था, प्रजापालन, प्रजाका कर्तव्य इत्यादि विषयों का विवेचन है और वार्ताशास्त्र के अन्तर्गत पशु-पालन, कृषि, और वाणिज्य हैं। प्राचीन काल में इन दोनों अङ्गों पर अनेक ग्रन्थ थे लेकिन इस समय दो चार पुस्तकें ही उपलब्ध हैं । इनमें मुख्य ग्रन्थ कौटिल्य अर्थशास्त्र है जो हाल में ही उपलब्ध हुआ है । कौटिल्य अर्थशास्त्र, चाणक्य मुनि का बनाया हुआ है और चाणक्य मुनि का समय चन्द्रगुप्त मौर्य का समय है। इन्हीं ने चन्द्रगुप्त को राजसिंहासन पर बैठाया था । इनका लिखा ग्रन्थ अत्यन्त प्रामाणिक और प्रतिभाशाली है। इसमें सम्राट् चन्द्रगुप्त

---

* मूल ग्रन्थ अँग्रेजी अनुवाद सहित पंजाब संस्कृत बुकडिपो, लाहौर से प्राप्य हैं।

के समय के राजशासनादि का अच्छा वर्णन है । ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ बड़े महत्व का है। इससे तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, व्यापारिक, एवं आर्थिक, परिस्थिति का खूब पता चलता है। ग्रन्थ संस्कृत में है लेकिन इसके अंगरेजी और हिन्दी अनुवाद भी हो गये हैं जो पंजाब संस्कृत बुक डिपो, लाहौर से प्राप्य हैं। दूसरा ग्रन्थ, जो अभी हाल में मिला है बार्हस्पत्यसूत्र है । यह ग्रन्थ कौटिल्य अर्थशास्त्र से भी प्राचीन है क्योंकि बृहस्पति अर्थशास्त्र के प्रथम आचार्य थे । यह ग्रन्थ सूत्रों में है और बहुत छोटा है। इसका अंगरेजी अनुवाद हो गया है, और हिन्दी अनुवाद छपने वाला है। अर्थशास्त्र सम्बन्धी विषय महाभारत अग्निपुराण, मत्स्य पुराणादि ग्रन्थों में भी मिलता है । शुक्रनीति भी इसी विषय का ग्रन्थ है प्राचीनकाल में अर्थशास्त्र सम्बन्धी कई मत थे जिन में मानव, बार्हस्पत्य, औषनस, पाराशर और अम्भीय मत मुख्य थे । इस विषय के ग्रन्थकर्ताओं और आचार्यों में भारद्वाज, विशालाक्ष, पिशुन, कौणपदन्त, वातव्याधि, बाहुदन्तीपुत्र, गौरशिरा आदि सुप्रसिद्ध और नामी थे। इनके ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं । यदि ये ग्रन्थ विद्यमान होते तो इस विषय में भारतीय अर्थशास्त्रीय साहित्य अन्य किसी साहित्य से कम न होता । अब इस विषय का जो कुछ अंश बच रहा है वह भी विचार गम्भीरता, राजनैतिक महत्ता तथा आर्थिक-गवेषणा की दृष्टि से कुछ कम नहीं है । कमी है पढ़नेवालों की । हमारे नवयुवक जो कालेजों में विदेशीय अर्थशास्त्र पढ़ते हैं और उनके विचारों के आधार पर भारतीय आर्थिक दशा का विवेचन करते हैं, एतद्देशीय अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों से अनभिज्ञ हैं ।

उन्हें याद रखना चाहिये कि विदेशीय सिद्धान्त हमारी परिस्थिति पर पूर्ण प्रकाश नहीं डालते हैं। जबतक भारतीय अर्थशास्त्र का ज्ञान न होगा तबतक भारत की आर्थिक परिस्थिति का सुधार कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है। यदि भारत में स्वराज्य होता और हमारे विद्यालयों में जातीय साहित्य पढ़ाया जाता तो हमारी स्थिति कुछ और ही होती।

भारतवर्ष में इस समय विश्वविद्यालयों की भरमार है लेकिन हैं ये सब विदेशीय यूनीवर्सिटियों की नकल। हिन्दू-यूनीवर्सिटी भी इस आक्षेप से मुक्त नहीं है। हमारा कहना यह नहीं है कि विदेशीय साहित्य पढ़ाया न जाय बल्कि यह कि उस के साथ ही साथ जातीय साहित्य का अध्ययन भी हो जिससे हमारे विद्यार्थी अपने पूर्वजों के उच्च विचारों से अपरिचित न रहें और केवल विदेशीय विचारों को जो हमारी वर्तमान परिस्थिति से कम सम्बन्ध रखते हैं, विद्या और ज्ञान का सर्वस्व न समझ बैठें। क्या यह बात असम्भव है कि विदेशीय साहित्य की पुस्तकों के साथ साथ भारतीय साहित्य के ग्रन्थ तुलनात्मक दृष्टि से पढ़ाये जायं? यदि और विश्वविद्यालयों में ऐसा होना असम्भव है तो हिन्दू-यूनिवर्सिटी में तो यह बात नहीं है। श्रीमान् मदनमोहन मालवीयजी का ध्यान इस ओर आकर्षित करना परमावश्यक है। नीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र, अर्थशास्त्र, संगीतशास्त्र, काव्यशास्त्र, शिल्पशास्त्र, चित्रकला शास्त्र, आदि आदि सभी विषय ऐसे हैं जिन पर उच्च श्रेणी के भारतीय ग्रन्थ उपलब्ध हैं। जो ग्रन्थ अभीतक संस्कृत में हैं उनके अनुवाद अंगरेजी और हिन्दी में होते जाते हैं और शीघ्र ही हो सकते हैं। फिर क्या कारण है

कि हमारे साहित्य को हिन्दू-विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में स्थान नहीं मिलता है ?

हम आशा करते हैं कि श्रीमालवीय जी इस पर विचार करेंगे और इस कमी को पूरा कर देगें। जबतक किसी युनीवर्सिटी में हमारे साहित्य का प्रवेश न होवे तबतक हमारा अनुरोध हमारे उच्च श्रेणियों के विद्यार्थियों से है कि वे अपना कुछ न कुछ समय निकालकर भारतीय साहित्य के उस अङ्ग का, जिसमें उनकी अभिरुचि हो, परिशीलन करें। जबतक वे ऐसा न करेंगे तो उनकी शिक्षा अधूरी ही रहेगी और उन्हें पीछे पछताना पड़ेगा क्योंकिं भारतवर्ष में किसी न किसी दिन आशा है शीघ्र ही-स्वराज्य स्थापित होगा और तब कोरी विदेशीय शिक्षा से काम न चलेगा। अस्तु।

कन्नोमल—

(जैन होस्टल मैगज़ीन.)

शुद्ध्यशुद्धिपत्र ।

(उपोद्घात)

अशुद्धि	शुद्धि	पंक्ति	पृष्ठ
अंश	अंश हैं	२२	१
जिस	जिन	१८	२
अर्थशास्त्र सम्बन्धीइनके,	इनके अर्थ-शास्त्रसम्बन्धी	१८	२
पड़ताः	पड़ता है	१६	५
जो	ये	५	७
जितते	जितने	१४	७
इस	ईसा	२४	७
भलिभाँति	भलीभाँति	२५	८
सम–कालीन	समकालीन	५	६
अवश्यकता	आवश्यकता	२५	६
६–६	६–१६	१७	१०
मिले	मिलाये	२२	१०
दिखाते	दिलाते	१०	१०
ईसा स	ईसा से	२६	११
प्राचनिता	प्राचीनता	११	१२

पृष्ठ २२ के अन्तमें निम्नलिखित नोट छपने से रह गया है:--

नोट–जिन सूत्रों पर अङ्क अथवा चिन्ह दिये हैं उनके पाठान्तर अथवा उन पर व्याकरणसम्बन्धी नोट बार्हस्पत्य सूत्रों की उस संस्कृतावृत्ति में दिये हैं जिसे इस पुस्तक के प्रकाशकों ने पृथक् छपवाई है । जिन्हें इन पाठान्तरों तथा नोटों को देखना है वे इन प्रकाशकों से पुस्तक की उस आवृति को मंगाकर पढ़ें ।

(हिन्दी अनुवाद)

अशुद्धि	शुद्धि	सूत्र	पृष्ठ
'हिअथ जावो	हो अथवा जो	५६	२७
(आशादी पर)	(आशादि पर)	५७	२७
कहना	कहकर	७२	२८
मश्विरा	मशिवरा	७६	२८
नाम कापाषरडी	नामका पाषरडी	१४	३२
इनका	इनका,	२६-२७	३८
क्ररता	क्रूरता	११	५०
यानि	यानि शब्द छोड़दो	८	५२

(टिप्पणी)

अशुद्धि	शुद्धि	पंक्ति	पृष्ठ
आवश्यक	आवश्यक	१६	५४
मित्र	मित्रता	१	५५
कर दिनके आठ भागों का कार्य	करे। दिनके आठ भागोंका कार्य यह है:—	१८-१६	५६
मश्वरा	मशिवरा	४, १८	५७
द्वार	द्वारा	८	५८
की	के	३	६१
सह्याद्र	सह्याद्रि	२४	६१
प्रधात	प्रधान	३	६२
पाराय	पाराडय	१३	६६
कारामराडल	कोरोमगडल	२०	६६
२४: २४३	२४१–२४३	११-१२	६८

(परिशिष्ट)

अशुद्धि	शुद्धि	पंक्ति	पृष्ठ
जैन साधु जिनकी संख्या अल्प है यह नियम हैं। कि,	जैन साधुओं का जिनकी संख्या अल्प है, यह नियम है कि	१६-२०	७३

अशुद्धि	शुद्धि	पंक्ति	पृष्ठ
बार्हस्पत्यसूत्रों में	बार्हस्पत्यसूत्रों के	१३	७८
कहलाता	कहलाती	१	७६
याती	यों तो	१३	८०
हैं	हैं।	२२	८०
के	की	१	८१
के	की	१०	८१
कशेर	केशर	१३	८८
क्षिप्रा	क्षिप्रा	१२	८६
(तिन्नेवेती)	तिन्नेवेली	३	६१
हैं। जिनमें	हैं जिनमें	२३	६१
रचा	रची	२,३	६४
घड़ियां बीत गईं हैं	बीत गये हैं	७	६४
रात्री	रात्रि	१८	६५
हा	हो	१०	६६
Ports of India	Poets of India	४	११७
Indian ports	Indian poets	३५	११७

नोट—बार्हस्पत्य सूत्रों में विशेषतः उनके तीसरे अध्याय में बहुत से देश, पर्वत नदी, तीर्थ स्थानों के नाम आये हैं। इन में से कुछ का पता पहले नहीं चला था लेकिन अब राव बहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य की हिन्दी में महाभारत मीमांसा देखने से इनमें से कितने ही स्थानों का पता लग गया है। इस पुस्तक में जो प्राचीन भारतवर्ष का नक़शा दिया हुआ है उसे देखने से इन स्थानों का पता लगता है।
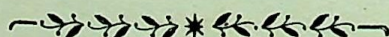
Lala Kannoo Mal's works.

लाला कन्नोमल एम. ए. की लिखी पुस्तकें.

(IN ENGLISH).

1. The master ports of India.
2. The secrets of Upnishads.
3. Lord Krishna's Message.
4. The Study of Jainism.
5. The Saptabhangi Naya.
6. Translation of Avadhuta Gita.
7. The Path of Devotion or the aphorisms of Narada on Bhakti.
8. The Sayings of Tulsidas.
9. The Sayings of Kabir.
10. Sankracharya's Prashnottari or the questions and answers on morals and religion.
11. Translation of Chicago Prashnottar.

(हिन्दी में)

12. गीतादर्शन।
13. साहित्यसंगीत निरूपण।
14. हर्बर्ट स्पेन्सर की ज्ञेयमीमांसा।
15. हर्बर्ट स्पेन्सर की अज्ञेयमीमांसा।
16. भारतवर्ष के धुरन्धर कवि।
17. सामाजिक सुधार।
18. हिन्दी व्याकरण बोध।
19. हिन्दी व्याकरण सार।
20. सप्तभङ्गीनय।
21. जैनतत्वमीमांसा।
22. बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र।

The books to be shortly published:—

1. The study of the Bhagvadgita.
2. Translation of Ishvargita.
3. The position of women in Hindu Society.
4. Jain Religion and philosophy.
5. National Education.
6. Three great Indian ports.
7. A few thoughts on Hindu philosophy and Religion.
8. Kama-Kala—Painting and Music illustrated.

खींचा गया है। भारत के सुप्रसिद्ध नेता **पंजाब-केसरी ला० लाजपतराय जी** का यह मत है कि "इस पुस्तक में वर्णित विषयों से तत्कालीन अवस्था का ऐसा चित्र मिलता है कि उस ने विद्या प्रेमी मनुष्यों के विचारों में प्राचीन आर्य लोगों की राजनीति व्यवस्था के विषय में एक भारी क्रांति उत्पन्न कर दी है।" भारत के प्राचीन-इतिहास-विज्ञशिरोमणि "**विंसेंट स्मिथ**" का मत है कि "चंद्रगुप्त का राज्य-प्रबंध ऐसा पूर्ण था कि उसकी उपमा प्राचीन संसार के किसी दूसरे देश में नहीं पाई जाती।" यहां तक कि वह इसको यूनानियों और अकबर के प्रबंध से भी अधिक पूर्ण पाता है जिसका ज्वलंत उदाहरण वह कौटिल्य अर्थ-शास्त्र को मानता है।

पं० कृष्णकान्त जी मालवीय अपने पत्र 'अभ्युदय' में लिखते हैं कि सम्राट् चंद्रगुप्त को राज सिंहासन पर बैठाने वाले "चाणक्य" ही मूल ग्रन्थ के लेखक हैं। ग्रन्थ बड़े ही महत्व का है। इसको पढ़ने से पता चलेगा कि कूट नीति और राज-नीति में भारत किसी समय में कैसे उच्च शिखर पर बैठा हुआ था। इससे यह ज्ञात होगा कि आधुनिक शासन-प्रथा की प्रत्येक महत्वपूर्ण बातें भारतवासी जानते थे। अनुवाद सुन्दर है और हम अनुवादक को, इस पुस्तक को हिन्दी जानने वाले के सामने रखने पर बधाई देते हैं। हम आशा करते हैं कि भारतवासी इस पुस्तक को अपनायेंगे।" हिन्दी की सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका **माधुरी** के संपादक अपने पत्र में लिखते हैं कि "संस्कृत में राजनीति के आचार्य श्रीचाणक्य कृत कौटिल्य अर्थ-शास्त्र नामक सामाजिक तथा राजनीतिक अर्थ-शास्त्र विषय

का एक बड़ा उपयोगी और उत्कृष्ट ग्रन्थ है। संस्कृत साहित्य संसार में उसका बड़ा मान है। अर्थ-शास्त्र प्रेमी हिंदी पाठकों को इसका अवश्य अध्ययन करना चाहिये।" **जर्मन विद्वान डा० जौली का** मत है कि "कौटिल्य अर्थ शास्त्र प्राचीन संस्कृत साहित्य का अमूल्य रत्न है।" सारांश यह है कि भारत के प्राचीन इतिहास की बहुत-सी उलझनें केवल इसी एक ग्रंन्थ से सुलझ गईं। संस्कृत साहित्य में यह एक ही ग्रंन्थ है जो कि प्राचीन भारत की आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक सभ्यता को विस्तृत रूप से प्रकट करता है। विद्वानों का ध्यान ज्यों ज्यों इस ओर बढ़ता जाता है, त्यों त्यों इसका महत्व भी दिन पर-दिन बढ़ता जाता है। भारत में समय आने वाला है जब कि कोई भी राष्ट्रीय या सरकारी संस्था ऐसी न होगी, जिसमें यह ग्रन्थ पाठ्य पुस्तक न हो शरीर के लिये जैसे भोजन आवश्यक है, वैसे ही प्राचीन आर्यों के रहन-सहन को समझने के लिये यह ग्रन्थ आवश्यक है। पुस्तक बहुत सुंदर टाइप में पुष्ट कागज़ पर छपी है। बढ़िया कपड़े की जिल्द सहित मूल्य केवल ४) है। पुस्तक धड़ाधड़ बिक रही है, इसलिये शीघ्रता करें॥

पुस्तक लौटाने की तिथि अन्त में अङ्कित है । इस तिथि को पुस्तक न लौटाने पर दस नये पैसे प्रति पुस्तक अतिरिक्त दिनों का अर्थदण्ड आप को लगाया जायेगा ।

५०००.११.१४ ।